॥ श्री ॥

महामहोपाध्याय पं० छज्जूराम शास्त्रि विद्यासागर विरचितं

परशुराम दिग्विजय महाकाव्यम्

प्रकाश शास्त्रि एम. ए. कृत
विमला नामक हिन्दी टीका समेतम्

प्रकाशक—
पं० रतिराम शास्त्री
अध्यक्ष साहित्य भंडार, मेरठ।

प्रथम संस्करण १०००] सं० २०२५ [मूल्य २)

प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली।

समर्पणम्

सजयत्वादित्यनाथः 'विद्यावारिधि' पदसनाथः ।
ब्रह्मवंशाब्जभास्करः दिल्लीराज्योपराज्यपालः ।।
तस्मै श्रीपरशुरामविजयं काव्यमर्पयति ।
म०म० छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर पदख्यातः ।।

दिल्ली के उपराज्यपाल, विद्यावारिधि, ब्राह्मण कुलकमल दिवाकर श्री आदित्यनाथ झा को ।

श्री परशुराम दिग्विजय महाकाव्य सादर समर्पित ।

—छज्जूराम शास्त्री

प्राक्कथन

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्कीति ते दश ॥

भगवान् के उपर्युक्त दशावतारों में भगवान् परशुराम षष्ठ अवतार थे। मत्स्य, कूर्म, वराह और वामन पुराणों में मत्स्यादि अवतारों का विस्तृत वर्णन किया गया है। श्रीराम का वाल्मीकि रामायण में और बुद्ध का बुद्ध चरितादि काव्यों में पर्याप्त वर्णन हुआ है और भगवान् कृष्ण की महिमा से तो सम्पूर्ण भागवत पुराण ही ओतप्रोत है। किन्तु भगवान् परशुराम का इस प्रकार एक स्थान पर विशद वर्णन कहीं उपलब्ध नहीं है। ब्रह्मवैवर्त और ब्रह्माण्डादिपुराणों में बहुत संक्षिप्त वर्णन मिलता है। अतः इनके पवित्र चरित्र को एकत्र करने के लिये इस काव्य का निर्माण हुआ है। इस काव्य के लेखक पूज्य पिताजी ने सर्वसाधारण के ज्ञानार्थ इसको अनुष्टुप् छन्द के सरल पद्यों में लिखा है। तभी कविरत्न अखिलानन्द जी ने लिखा है—

कविरमरः कालिदासः कविरभिनन्दश्च छज्जुरामश्च ।
वृत्तेऽनुष्टुभिनिपुणाः कृपणा अन्येसु वृत्तेषु ॥

तथापि सर्वसाधारण की सुविधा के लिये पूज्य पिताजी के प्रियशिष्य प्रकाश शास्त्री एम. ए. की 'विमला' हिन्दी टीका भी साथ दे दी गई है। आशा है धार्मिक जनता इस महाकाव्य से लाभ उठायेगी।

निवेदक—
जीवनराम शास्त्री प्रभाकर
एम. लिट्.
दिल्ली।

कथा वस्तु

१. प्रथमः सर्ग—

जमदग्नि, परशुराम आदि की उत्पत्ति ।
कार्तवीर्यार्जुन का जमदग्नि के आश्रम में आतिथ्य, जमदग्नि से कामधेनु न मिलने पर परस्पर युद्ध ।

२. द्वितीयः सर्गः—

कार्तवीर्यार्जुन का जमदग्नि के साथ युद्ध ।

३. तृतीयः सर्गः—

कार्तिवीर्यार्जुन का गौ के न मिलने पर पुनः युद्ध । युद्ध में जमदग्नि का मारा जाना । परशुराम जी का २१ बार क्षत्रियों की हनन प्रतिज्ञा ।

४. चतुर्थः सर्गः—

जमदग्नि से सौकार्त रेणुका के प्रति आकाश वाणी और भृगु द्वारा जमदग्नि का जीवन ।

५. पंञ्चमः सर्गः—

पिता की आज्ञा से परशुराम जी का ब्रह्मलोक में जाना, उनकी आज्ञा से शिवलोक में जाना । शिव की कृपा से पाशुपतास्त्र और परशु की प्राप्ति ।

३. षष्ठः सर्गः—

पुष्कर तीर्थ में जाकर मन्त्रसिद्धि करना और वहाँ से आकर कार्तिवीर्यार्जुन से युद्ध करना ।

७. सप्तमः सर्गः—

सुचन्द्र और सहस्राक्ष आदि नृपों के साथ कार्तवीर्यार्जुन का युद्ध में जाना । परशुराम जी के साथ युद्ध ।

कथा वस्तु

१. प्रथमः सर्ग—

जमदग्नि, परशुराम आदि की उत्पत्ति ।
कार्तवीर्यार्जुन का जमदग्नि के आश्रम में आतिथ्य, जमदग्नि से कामधेनु न मिलने पर परस्पर युद्ध ।

२. द्वितीयः सर्गः—

कार्तवीर्यार्जुन का जमदग्नि के साथ युद्ध ।

३. तृतीयः सर्गः—

कार्तिवीर्यार्जुन का गौ के न मिलने पर पुनः युद्ध । युद्ध में जमदग्नि का मारा जाना । परशुराम जी का २१ बार क्षत्रियों की हनन प्रतिज्ञा ।

४. चतुर्थः सर्गः—

जमदग्नि से सौकार्त रेणुका के प्रति आकाश वाणी और भृगु द्वारा जमदग्नि का जीवन ।

५. पंञ्चमः सर्गः—

पिता की आज्ञा से परशुराम जी का ब्रह्मलोक में जाना, उनकी आज्ञा से शिवलोक में जाना । शिव की कृपा से पाशुपतास्त्र और परशु की प्राप्ति ।

३. षष्ठः सर्गः—

पुष्कर तीर्थ में जाकर मन्त्रसिद्धि करना और वहाँ से आकर कार्तिवीर्यार्जुन से युद्ध करना ।

७. सप्तमः सर्गः—

सुचन्द्र और सहस्राक्ष आदि नृपों के साथ कार्तवीर्यार्जुन का युद्ध में जाना । परशुराम जी के साथ युद्ध ।

८. अष्टमः सर्गः—

परशुराम जी द्वारा सुचन्द्र सहस्राक्ष का पराजय और अन्त में कार्तवीर्यार्जुन का परशुराम जी से घोर युद्ध करके मृत्यु। परशुराम जी का सर्व-देवताओं द्वारा अभिनन्दन।

९. नवमः सर्गः—

परशुराम जी का पुनः शिवजी के पास जाना और गणेश जी का एक दन्त भंग करना। रुष्ट पार्वती जी का विष्णु द्वारा शान्त करना।

१०. दशमः सर्गः—

मिथिला में शिवधनु भंग करके सीता को विवाह कर ले जाते हुए श्री रामचन्द्रादि के साथ समागम, परस्पर वार्तालाप।

११. एकादशः सर्गः—

जमदग्नि जी का नर्मदाश्रम को त्याग कर कुरुक्षेत्र में आकर आश्रम बनाना, वहाँ रहकर तपस्या करना, परशुराम जी का महेन्द्र पर्वत में जाना, वापिस आने पर पितृ-मातृ वध सुनना फिर अनेक सहस्र क्षत्रियों को राम ह्रद में ले जाकर वध करना। गया में जाकर श्राद्ध करना।

१२. द्वादशः सर्गः—

परशुराम जी द्वारा अश्वमेध यज्ञ करना, गोकर्ण क्षेत्र के उद्धारार्थ समुद्र निग्रह और भीष्म के साथ युद्ध करके उसको पराजित करना।

अशुद्धिपत्रम्

अशुद्धि		शुद्धि
भीफितम्	पृ० १ पं० ११	भीप्सितम्
रामाहम्	पृ० १ पं० १५	रामाह्वम्
कार्तवीर्यार्जुनसमः	पृ० २ पं० १५	कार्तवीर्यसमोराजा
स्नुषामकथयत्	पृ० ३ पं० १९	स्नुषांसचाहस्म
तोषतामासा	पृ० ४ पं० १६	तोषयामास
नेहक	पृ० ४ पं० १६	नेटक्
स्त्वददद्	पृ० ४ पं० १६	स्त्ववदद्
चैवाहिका	पृ० ९ पं० ५	चैवाह्निकाः
सव	पृ० १० पं० २	सर्वं
चगद्नो	पृ० १० पं० ६	जगद्भो
तसर्वं	पृ० ११ पं० ११	तत्सर्वं
तस्पनाः	पृ० १३ पं० २०	ततः सेनाः
कर्तव्यविमूढधीः	पृ० १३ पं० २०	कर्तव्यमूढधीः
समापासां	पृ० १७ पं० ६	स अयातां
अमोघास्त्राहते	पृ० १८ पं० १९	अमोघास्त्राह्वते
धृतिधृत्वाधराधिप	पृ० १९ पं० २२	इतिश्रुत्वानृपोऽब्रवीत्
नान्यवोचत	पृ० १९ पं० २२	त्वमृषिसत्तम,
नृप	पृ० २१ पं० १	नृपः
तत्क्षणं	पृ० २१ पं० २	मुनिस्तत्
पुनर्नारा	पृ० २१ पं० १३	मुनिर्नारा
प्रलयाग्नि ज्वालतुल्यंत	पृ० २१ पं० १९	प्रलयाग्नि समंततः
श्रमेन्	पृ० २४ पं० ३	श्रमम्
सेनपासंख्यवायुक्तः	पृ० २४ पं० ८	गृहीत्वासचतैर्युक्तः

८. अष्टम: सर्ग:—

परशुराम जी द्वारा सुचन्द्र सहस्राक्ष का पराजय और अन्त में कार्तवीर्यार्जुन का परशुराम जी से घोर युद्ध करके मृत्यु। परशुराम जी का सर्व-देवताओं द्वारा अभिनन्दन।

९. नवम: सर्ग:—

परशुराम जी का पुन: शिवजी के पास जाना और गणेश जी का एक दन्त भंग करना। रुष्ट पार्वती जी का विष्णु द्वारा शान्त करना।

१०. दशम: सर्ग:—

मिथिला में शिवधनु भंग करके सीता को विवाह कर ले जाते हुए श्री रामचन्द्रादि के साथ समागम, परस्पर वार्तालाप।

११. एकादश: सर्ग:—

जमदग्नि जी का नर्मदाश्रम को त्याग कर कुरुक्षेत्र में आकर आश्रम बनाना, वहाँ रहकर तपस्या करना, परशुराम जी का महेन्द्र पर्वत में जाना, वापिस आने पर पितृ-मातृ वध सुनना फिर अनेक सहस्र क्षत्रियों को राम ह्रद में ले जाकर वध करना। गया में जाकर श्राद्ध करना।

१२. द्वादश: सर्ग:—

परशुराम जी द्वारा अश्वमेध यज्ञ करना, गोकर्ण क्षेत्र के उद्धारार्थ समुद्र निग्रह और भीष्म के साथ युद्ध करके उसको पराजित करना।

अशुद्धिपत्रम्

अशुद्धि		शुद्धि
भीफितम्	पृ० १ पं० ११	भीप्सितम्
रामाहम्	पृ० १ पं० १५	रामाह्वम्
कार्तवीर्यार्जुनसमः	पृ० २ पं० १५	कार्तवीर्यसमोराजा
स्नुषामकथयत्	पृ० ३ पं० १६	स्नुषांसचाहस्म
तोषतामासा	पृ० ४ पं० १६	तोषयामास
नेहक	पृ० ४ पं० १६	नेद्दक्
स्त्वद्दद्	पृ० ४ पं० १६	स्त्ववदद्
चैवाहिका	पृ० ६ पं० ५	चैवाह्निकाः
सव	पृ० १० पं० २	सर्वं
चगद्नो	पृ० १० पं० ६	जगद्भो
तसर्वं	पृ० ११ पं० ११	तत्सर्वं
तस्पनाः	पृ० १३ पं० २०	ततः सेनाः
कर्तव्यविमूढधीः	पृ० १३ पं० २०	कर्तव्यमूढधीः
समापासां	पृ० १७ पं० ६	स अयातां
अमोघास्त्राहते	पृ० १८ पं० १६	अमोघास्त्राहृते
धृतिधृत्वाधराधिप	पृ० १६ पं० २२	इतिश्रुत्वानृपोऽब्रवीत्
नान्यवोचत	पृ० १६ पं० २२	त्वमृषिसत्तम,
नृप	पृ० २१ पं० १	नृपः
तत्क्षणं	पृ० २१ पं० २	मुनिस्तत्
पुनर्नारा	पृ० २१ पं० १३	मुनिर्नारा
प्रलयाग्नि ज्वालतुल्यंत	पृ० २१ पं० १६	प्रलयाग्नि समंततः
श्रमेन्	पृ० २४ पं० ३	श्रमम्
सेनपासंख्यवायुक्तः	पृ० २४ पं० ८	गृहीत्वासचतैर्युक्तः

अशुद्धि		शुद्धि
ससेनंच निद्रितरंम्	पृ० २५ पं० २३	सैन्यं च निद्रितम्
नांक्तिह्यम	पृ० २७ पं० ३	तांशक्तिह्य
तावत्सख्यान्संख्ये	पृ० ३० पं० ३	तावद्वारमहंसंख्ये
वित्रे	पृ० ३० पं० २०	चित्ते
तस्थः	पृ० ३१ पं० ८	तनया, तस्थुः
शाश्वतोऽयं	पृ० ३२ पं०	पुरात्नोऽयं
ब्रह्माणं	पृ० ३५ पं० २	धातारम्
रचितं	पृ० २६ पं० १३	संयुक्तं
कार्तिकेयं	पृ० ३८ पं० ६	षडास्यं च
सुरगणाः	पृ० ३८ पं० २१	सुपर्वाणः
धारिणि	पृ० ४१ पं० ११	दारिणि
जयजयजय	पृ० ४१ पं० २०	जय जय
साधवः	पृ० ४६ पं० १४	सज्जनाः
चव	पृ० ४४ पं० १	चैव
नमदातीर सन्निधो	पृ० ४५ पं० १७	नर्मदातीर सन्निधौ
त्वतो	पृ० ५४ पं० १४	त्वत्तो
निहत्व	पृ० ६० पं० १३	निहत्य
विहाप	पृ० ६२ पं० १०	विहाय
शिवाय	पृ० ६२ पं० १३	शिवायै
पात्रय	पृ० ६२ प० २३	पालय
मेऽतिथषे	पृ० ६२ पं० २६	मेऽतिथये
महाभूतन्	पृ० ६६ पं० १३	महानभूत्
व्याघ्रा	पृ० ६७ पं० २२	व्याघ्रो
व्याघ्रो हण्ति स्टगातथा	पृ० ६७ पं० २२	व्याघ्रं हन्ति मृगस्तथा
भवनिमर्गो	पृ० ७८ पं० ५	निसर्गो

।। श्री गणेशायनमः ।।

अथ परशुराम दिग्विजये महाकाव्ये

प्रथमः सर्गः

स जयति पाराशर्यः सत्यवतीनन्दनो व्यासः ।
यन्मुखनिःसृतवाणीमाश्रयते सर्वविल्लोकः ।।१।।
आचार्यं प्रवरं नत्वा ज्ञानबुद्धिप्रदं मुहुः ।
आदेशात्तस्यटीकेयंरच्यते विमलाभिधा ।।

महर्षि पराशर और सत्यवती के पुत्र भगवान् व्यास विजय को प्राप्त हों जिनके मुख से निकली वाणी का सभी विद्वज्जन आश्रय लेते हैं।

शिवं करोतु तच्छैवं चरणद्वय पंकजम् ।
यत्प्रसादात्जनः सर्वः सर्वं प्राप्नोत्यभीफितम् ।।२।।

भगवान् शिव के चरण कमल कल्याण करें जिनकी कृपा से समस्त जगत् सकल अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त करता है।

गणेशमम्बिकां नत्वा मामकीं च स्वमातरम् ।
पितरं मोक्षरामाहं मूलचन्द्रञ्च सोदरम् ।।३।।

भगवान् गणेश भगवती पार्वती मामकीनामकमाता मोक्षरामनामक पिता और मूलचन्द्र भ्राता को नमस्कार करके।

नत्वा परशुरामं च रेणुकाजमदग्निजम् ।
तस्य दिग्विजयं काव्यं लिख्यते सरलैः पदैः ।।४।।

रेणुका और जमदग्नि के पुत्र भगवान् परशुराम को नमस्कार करके मैं उनकी दिग्विजय से सम्बन्धित काव्य सरल पदों में लिख रहा हूँ।

पुरन्दर पुरस्पर्धिन्यभवद् भूमिभूषणम् ।
माहिष्मतीति नगरी शर्मदा नर्मदान्तिके ।।५।।

इन्द्र की नगरी की स्पर्धा करने वाली, पृथ्वी की अलंकारभूत माहिष्मती नामकी नगरी कल्याणदा नर्मदा के किनारे स्थित थी ।।

कार्तवीर्यार्जुनो नाम नृपो माहिष्मतीपतिः ।
सहस्रबाहु वीरेन्द्रः शशास सकलां महीम् ।।६।।

सहस्र भुजाओं वाला कार्तवीर्यार्जुन नामक माहिष्मती नगरी का बलवान् राजा समस्त पृथ्वी पर शासन करता था ।

दत्तात्रेयप्रसादेन विमानं तस्य कांचनन् ।
ममर्द तेन सर्वर्षीन् देवांश्चापि स दुर्मतिः ।।७।।

भगवान् दत्तात्रेय के प्रसाद से उसके पास एक सुवर्ण का विमान था जिसके द्वारा उस दुर्मति ने समस्त ऋषियों और देवताओं का भी मर्दन किया था ।

कार्तवीर्यार्जुन समो नान्यो भूतो भविष्यति ।
पराजितो रणे येन रावणो लोकरावणः ।।८।।

समस्त लोकों को रुलाने वाले रावण को भी जिसने रण में पराजित कर दिया था उस कार्तवीर्यार्जुन के समान न तो कोई पृथ्वी में था और न होगा ही ।।

तेनैव स विमानेन मत्तः चित्ररथे वने ।
क्रीड़न्तमेकदा पत्न्या धर्षयामास वासवम् ।।९।।

एक बार उसी विमान के अभिमान से उसने चित्ररथ वन में पत्नी के साथ क्रीड़ा करते हुए इन्द्र का तिरस्कार कर दिया था ।

सशक्राः अमराः सर्वे समेत्योचुर्जनार्दनम् ।
कार्तवीर्यार्जुनं देव जहीमं कुनृपं प्रभो ॥१०॥

तब इन्द्र सहित समस्त देवताओं ने जाकर भगवान् विष्णु से कहा कि हे प्रभो आप इस दुष्ट राजा कार्तवीर्यार्जुन का वध करें।

जगाद भगवान्विष्णुर्देवान् देवार्तिनाशनः ।
शीघ्रमेनं हनिष्यामि रामो भूत्वांशकैर्निजैः ॥११॥

देवताओं का दुःख हरण करनेवाले भगवान् विष्णु ने देवताओं से कहा कि मैं शीघ्र ही अपने अंशों के द्वारा (परशुराम) बनकर इसका वध करूंगा ॥

गाधीति विश्रुतो राजा कान्यकुब्जपुरे पुरा ।
राज्यं त्यक्त्वा वने यातः पुत्राभावेन दुःखितः ॥१२॥

प्राचीन समय में कान्यकुब्जपुर में गाधि नामक एक विख्यात राजा था जोकि पुत्राभाव से दुःखित होकर राज्य छोड़कर वन में चला गया ॥

वने निवसत स्तस्य कन्यैकासमजायत ।
ऋचीको भृगुपुत्रस्तां वरयामास सुन्दरीम् ॥१३॥

वन में रहते समय उसके एक सुन्दर पुत्री हुई जिसके साथ भृगुपुत्र-ऋचीक ने विवाह कर लिया ॥

भार्यापती स्वपितरं सेवयामासतुर्भृगुम् ।
तुष्टः स्नुषामकथयत् वृणीष्व वरनीप्सितम् ॥१४॥

उन दोनों पति पत्नी ने अपने पिता भृगु की खूब सेवा की जिससे सन्तुष्ट होकर उन्होंने अपनी पुत्रवधू से वर मांगने के लिए कहा।

वरं वव्रेऽथ सा साध्वी आत्मनः पुत्रहेतवे ।
मातुश्चपुत्रहीनायाः दुःखितायाः कृते तथा ॥१५॥

उस साध्वी ने अपने तथा दुःखी पुत्र रहित माता के निमित्त पुत्र होने का वर मांगा ।

भृगुरुचे महाभागे चरुद्वयमिदं कृतम् ।
प्राशितव्यं यथोक्तं मे नैव कार्यो व्यतिक्रमः ।।१६।।

भृगु ने कहा कि हे महाभागे ये मैंने दो चरु तैयार किए हैं । जिस प्रकार मैंने बताया है उसी प्रकार खाना और खिलाना इसमें व्यतिक्रम नहीं करना ।

कृतं व्यतिक्रमं ज्ञात्वा आगत्यमुनिरब्रवीत् ।
अनर्थो भविताभूयान् द्वयोः चर्वोः व्यतिक्रमात् ।।१७।।

चरुओं में व्यतिक्रम हो गया है यह जानकर मुनि आये और कहा कि इससे बहुत बड़ा अनर्थ होगा ।

ब्राह्मणः क्षत्रवृत्तिर्वै तव पुत्रो भविष्यति ।
क्षत्रियो ब्राह्मणाचारो मातुस्तव न संशयः ।।१८।।

तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रियों जैसी वृत्ति वाला होगा और तुम्हारी माता का पुत्र क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मणों जैसे आचार का होगा।

भृगुं सातोषतामास पुत्रो नेहक भवेन्मम ।
काम पौत्रस्तु भवतादेवमस्त्वदद्भृगुः ।।१९।।

यह सुनकर उसने भृगु से विनती की और कहा कि मेरा पु ऐसा न हो भले ही पौत्र ऐसा हो जाए । भृगु ने कहा ऐसा ही होगा ।

जमदग्निं तु सा पुत्रं जनयामास सुन्दरी ।
तेजसा वपुषायुक्त मृचीकसदृशं गुणैः ।।२०।।

उस सुन्दरी ने जमदग्नि को उत्पन्न किया जोकि तेजस्वी शरी वाला और गुणों में मृचीक के समान था ।

भृगोः चरुप्रभावेण गाधिपत्न्यां महा तपाः ।
विश्वामित्रोऽभवत्पुत्रः तपसा विप्रतांगतः ।।२१।।

भृगु के चरु के प्रभाव से गाधिपत्नी के विश्वामित्र उत्पन्न हुए जिन्होंने अपने तप के प्रभाव से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया ।

वेदाध्ययनसंसक्तो जमदग्निर्महामुनिः ।
तपस्तप्त्वाऽखिलान्देवान् ब्रह्मादीन् समतोषयत् ।।२२।।

वेदाध्ययन में लगे हुए महामुनि जमदग्नि ने अपने तप से ब्रह्मादि समस्त देवताओं को सन्तुष्ट किया ।

रेणुकामुपलभ्यासौ पत्नीं पदमसुन्दरीम् ।
मनोऽनुकूलां हर्षस्य परां काष्ठामुपागमत् ।।२३।।

पत्नी के रूप में मनोऽनुकूल परम सुन्दरी रेणुका को प्राप्त करके वे बहुत आनन्दित हुए ।

तस्याःसकाशाच्चत्वारो जज्ञिरे रामपञ्चमाः ।
पुत्रास्तेषु गुणाधिक्यात् रामः सर्वोत्तमोऽभवत् ।।२४।।

उससे जमदग्नि ऋषि के पांच पुत्र हुए जिनमें परशुराम सबसे छोटे थे किन्तु गुणों में सबसे बढ़े-चढ़े थे ।

वैशाख शुक्लपक्षस्य तृतीयाख्याक्षयातिथौ ।
त्रेतायुगस्य प्रारम्भे पर्शु रामोह्यवातरत् ।।२५।।

त्रेतायुग के प्रारम्भ में वैशाख शुक्लपक्ष की अक्षय तृतीया को परशुराम का जन्म हुआ ।

फलाहाराय सर्वेषु गतेषु च वनान्तरे ।
रेणुका स्नातुमगमत् नर्मदायां धृतव्रताः ।।२६।।

एक दिन जबकि सभी वन में फल लेने गए हुए थे रेणुका नर्मदा नदी में स्नान करने के लिए गई ।

सा तु चित्ररथं नाम मार्तिक्याधिपतिं नृपम् ।
क्रीडन्तं सलिले दृष्ट्वा सभार्यं काम विक्लवा ॥२७॥

वहां चित्ररथ नामक मार्तिक्याधिपति को जल में अपनी भार्या के साथ क्रीड़ा करते हुए देखकर वह कामातुर हो गई ।

मानसव्यभिचारात् सा त्रस्ता परमसुन्दरी ।
प्रविवेशाश्रमंस्वीयं मुनिस्त्विदमबुध्यत ॥२८॥

इस मानसिक व्यभिचार के कारण त्रस्त सी उस रेणुका ने जब आश्रम में प्रवेश किया तो जमदग्नि ऋषि इस बात को ताड़ गए ॥

स तां दृष्ट्वा च्युतां धैर्यात् पातिव्रत्य विवर्जिताम् ।
धिक् धिक् शब्देन बहुशो गर्हयामास रेणुकाम् ॥२९॥

पातिव्रत्य धर्म से च्युत उस अधीर रेणुका को देखकर उन्होंने उसको बहुत धिक्कारा ।

जामदग्न्यस्ततो ज्येष्ठः रुमण्वान् नामकः सुधीः ।
आजगाम सुषेणश्च वसुर्विश्वावसुस्तथा ॥३०॥

कुछ समय के पश्चात् जमदग्नि ऋषि का रुकण्वान् नामक बड़ा पुत्र आश्रम में आया और उसके पीछे सुषेण, वसु एवं विश्वावसु भी वहाँ आए ।

भगवानानुपूर्व्यात्तान् वधे मातुरजिज्ञपत् ।
न च ते जातसंस्नेहाः किंचिदूचुर्मुनिंप्रति ॥३१॥

जगदग्नि ने क्रमशः प्रत्येक को अपनी माता का वध करने की आज्ञा दी किन्तु माता के प्रति स्नेह के कारण उन्होंने मुनि को कोई उत्तर नहीं दिया ।

शशाप तान् मुनिः क्रोधात्तेशप्ताः चेतनां जहुः ।
पशुपक्षिसधर्माणः क्षणान्जाता जडोपमा ।।३२।।

तब मुनि ने क्रोध में उनको शाप दे दिया जिससे उनकी चेतना लुप्त हो गई और वे पशुपक्षियों के सदृश जड़ हो गए ।

पर्शु रामस्ततो ह्यागात् पितुः पार्श्वें महामनाः ।
उवाच तं पितुर्भक्तं जमदग्निर्महामुनिः ।।३३।।

तब पिता के पास परशुराम आए और महामुनि जमदग्नि ने पितृ-भक्त परशुराम से कहा ।

जहीमां मातरं पापां राम त्वं मा व्यथां कृथाः ।
क्षणात्स पर्शुना रामो मातुर्मस्तकमच्छिनत् ।।३४।।

हे राम तुम इस पापिनी मां को मार डालो और बिलकुल भी खेद न करो । इतना सुनते ही भगवान् परशुराम ने परशू से अपनी माता का मस्तक काट डाला ।

क्षणेनैव महर्षेस्तु क्रोधाग्निः शान्तिमाययौ ।
रामं प्रति प्रसन्नः सन् पुनरेतदवोचत ।।३५।।

क्षणभर में ही महर्षि की क्रोधाग्नि शान्त हो गई और प्रसन्न होकर उन्होंने परशुराम से कहा ।

ममाज्ञया त्वया पुत्र कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
वृणीष्व कामान् धर्मज्ञ यान्यानिच्छसि चेतसा ।।३६।।

हे पुत्र मेरी आज्ञा से तुमने यह दुष्कर कृत्य किया है अतः जो जो तुम्हारी इच्छाएं हैं उन्हें तुम वर रूप में मुझसे मांग लो ।

स वव्रे जीवनं मातुरस्मृतिं स्ववधस्य च ।
पापस्य तस्य नाशं च भ्रातॄणां प्रकृतिं तथा ।।३७।।

अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे चिरंजीवित्वमात्मनः ।
ददौ स कामांस्तान्सर्वान् महर्षिःप्रीतमानसः ॥३८॥

उन्होंने वर रूप में अपनी माता का जीवन, स्ववध की विस्मृति, मातृवध पाप का नाश भाइयों की पूर्व स्थिति युद्ध में अयुतिद्वन्द्वता, एवं अपने लिए चिरजीवित्व मांगा। प्रमुदित महर्षि ने उनकी इन सब इच्छाओं की पूर्ति की।

एवमाश्रमसंस्थानः पञ्चपुत्रैर्महातपाः ।
जमदग्निः परं मोदमवाप श्री हरिं स्मरन् ॥३९॥

इस प्रकार अपने पांच पुत्रों के साथ आश्रम में रहते हुए महातपस्वी जमदग्नि भगवान् का भजन करते हुए अतीव प्रसन्न हुए।

चतुर्वेदानधीतेस्म मुनिपुत्रकपञ्चकम् ।
सर्वं शस्त्रास्त्र जातं च धनुर्वेदं निजात्पितुः ॥४०॥

पांचों मुनिकुमारों ने अपने पिता से चारों वेद पढ़े एवं समस्त शस्त्रास्त्र तथा धनुर्वेद की शिक्षा ली।

पितुराज्ञामनुप्राप्य भगवान्पर्शुरामकः ।
गत्वा चकार परमं पुष्करे दुष्करं तपः ॥४१॥

अपने पिता से आज्ञा लेकर भगवान् परशुराम ने पुष्कर में जाकर दुष्कर तप किया।

एकदामृगयार्थं वै कार्तवीर्यो वनं गतः ।
मृगान्निहत्य बहुलान् परिश्रान्तो बभूव सः ॥४२॥

एक बार कार्तवीर्य वन में आखेट खेलने गया और बहुत से मृगों को मारने के कारण थक गया।

जाते निशामुखे राजा तस्मिन्नेव वने शुभे।
जमदग्न्याश्रमाभ्यासे स्थितवान् सेनयान्वितः ॥४३॥

रात्रि होजाने पर वह राजा अपनी सेना के साथ उसी वन में जमदग्नि के आश्रम के पास ठहर गया।

प्रातः सरोवरे स्नात्वा कृत्वा चैवाह्निकाः क्रियाः।
दत्तात्रेयेण वै दत्तं मन्त्रं भक्त्याऽजपन्नृपः ॥४४॥

प्रातःकाल सरोवर में स्नान करके एवं आह्निक क्रिया करने के उपरान्त राजा ने भगवान् दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त मन्त्र का भक्तिपूर्वक जाप किया॥

जमदग्निस्तु तं दृष्ट्वा शुष्ककण्ठोष्ठ तालुकम्।
प्रीत्या भावित वांस्तस्य कुशलं चापिपृष्टवान् ॥४५॥

जमदग्नि ने राजा को भूखा प्यासा देखकर प्रेमपूर्वक उसका सत्कार किया एवं कुशल क्षेम पूछी॥

ननाम तं मुनिं राजा दिवाकर समप्रभम्।
मुनिस्तस्मै ददौ प्रीत्या विनम्राय शुभाशिषम् ॥४६॥

राजा ने सूर्य के समान तेजस्वी मुनि को प्रणाम किया और उन्होंने प्रेम से विनम्र राजा को आशीर्वाद दिया॥

वृत्तान्तं कथयामास नृपः स्वानशनादिकम्।
श्रुत्वैतन् मुनिना राजा भोजनाय निमन्त्रितः ॥४७॥

राजा के भूखे होने का वृतान्त सुनकर मुनि ने उसे भोजन के लिए निमन्त्रित किया।

विज्ञाप्यैनं ससेनं तं स्वाश्रमं गतवान्मुनिः ।
रमासमांचतोधेनुं प्रति सव न्यवेदयत् ॥४८॥

सेना सहित राजा को निमन्त्रित करके मुनि अपने आश्रम चले गए और लक्ष्मी तुल्य कामधेनु को सब कुछ बता दिया ।

उवाच सा मुनिं भीतं स्थितायां मयि किं भयम् !
जगद्नोजयितुं शक्तः त्वं मुने किं नराधियः ॥४९॥

उसने भयभीत मुनि से कहा कि मेरे रहते हुए आप क्यों घबरा रहे हैं । राजा की तो बात ही क्या समस्त जगत् को भी भोजन कराने में आप समर्थ हैं ।

राजभोजन योग्यं यत् यद्वस्तु त्वं समीहसे ।
ततोऽधिकं प्रदास्यामि भूतले यच्चदुर्लभम् ॥५०॥

जिस जिस वस्तु को आप राजभोजन योग्य समझते हैं उससे भी अधिक मैं प्रदान करूंगी और जो पृथ्वी में दुर्लभ वस्तुएं हैं वह भी प्रदान करूंगी ।

भोजनार्हाणि पात्राणि शाकपात्राणिथैव हि ।
सुवर्ण रजतादीनां दास्यामि तव प्रीतये ॥५१॥

तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं सोने और चांदी के बने हुए भोजन पात्र एवं शाकपात्र प्रदान करूंगी ।

नानाविधानि भोज्यानि द्रव्याणि च फलानि च ।
पक्वान्नानां समूहं च परमान्नस्य सञ्चयम् ॥५२॥
दुग्धानां च घृतानां च दध्नां चैव हि कूपकम् ।
इत्युक्त्वा सा ददौ तस्मै सर्वं नृपति हेतवे ॥५३॥

यह कहकर उस कामधेनु ने नाना प्रकार के भोजन, द्रव्य, फल, पक्वानों एवं क्षीरान्नों के ढेर तथा घी दूध और दही के कूप मुनि को राजा के निमित्त प्रदान किए ।

मुनिः सम्भृत सम्भारः ससेनं नृपमाह्वयत् ।
भोजयामास सर्वं च दृष्ट्वा राजातिविस्मितः ॥५४॥

सब सामग्री उपलब्ध हो जाने पर मुनि ने सेना सहित राजा को बुलाया तथा सब कुछ खिलाया । राजा को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ ।

राजा स्वमन्त्रिणं प्राह पात्राण्येतानि लोकय ।
मर्त्यलोके त्वलभ्यानि मुनेरस्य कथं गृहे ॥५५॥

राजा ने अपने मन्त्री से कहा कि इन पात्रों को देखो । ये तो मर्त्यलोक में अलभ्य हैं फिर इस मुनि के घर में कैसे विद्यमान हैं ।

मन्त्री तु कथयामास यद्दृष्टं मुनिसद्मनि ।
आश्चर्यकारित सर्वं काष्ठपत्र कुशान्विते ॥५६॥

मन्त्री ने कहा कि काठकुशा और पत्रों से बने हुए मुनि के इस घर में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है वह सब आश्चर्यजनक है ।

वृक्षचर्म परीधाना मुवयो जटिलाइमे ।
कपिलैव विचित्रैका भासमाना स्वतेजसा ॥५७॥
कुट्येक देशे तिष्ठन्ती रक्त पंकज लोचना ।
सर्व संपद् गुणाधारा नारायण प्रियायथा ॥५८॥

ये तो सब वल्कल पहनने वाले और जटाजूट रखने वाले मुनिगण हैं बस कुटी के एक कोने में बैठी हुई एक यह कामधेनु ही विचित्र है जोकि अपने तेज से देदीप्यमान हो रही है जिसके नेत्र लाल कमल के समान हैं, जो समस्त सम्पत्रियों का आधार है और साक्षात् लक्ष्मी के समान दीख रही है ।

सचिवोक्त्या स दुर्बुद्धी राजा कालविमोहितः ।
ययाचे तां मुनेर्धेनं मोदयन्तीं जगन्मनः ॥५९॥

सचिव के इस प्रकार कहने से काल से मोहित हुए उस दुर्बुद्धि राजा ने मुनि से जंगत् को आनन्द देने वाली उस गाय के लिए याचना की।

राजोवाच मुने भिक्षां देहि मे कामधेनुकाम्।
दुर्लभां सर्वकामानां दात्रीं त्वमसि कामद: ।।६०।।

राजा ने कहा कि हे मुने आप तो सब इच्छाओं को पूरा करनेवाले हैं आप भिक्षा में मुझे इस दुर्लभ एवं सब इच्छाओं को पूरा करने वाली कामधेनु को दे दें।

युष्मद्विधानां दातृणामदेयं नास्ति किंचन।
दधीचि र्देवताभ्यो वै ददौ स्वास्थीति विश्रुतम् ।।६१।।

आप जैसे दाताओं के लिए अदेय कुछ भी नहीं है। दधीचि ऋषि ने देवताओं के लिए अपनी अस्थियां भी दे दीं यह सुविख्यात है।

त्वन्तु भ्रूभंग मात्रेण तपोराशे तपोधन।
समूहं कामधेनूनां स्रष्टुमर्हस्ययत्नत: ।।६२।।

हे तपोराशे ! हे तपोधन ! आप तो भ्रूभंग मात्र से अनायास ही कामधेनुओं के समूह को उत्पन्न कर सकते हैं।

मुनिरूचे शठाग्रचस्त्वं पश्यसि न व्यतिक्रमम्।
दानं दास्यामि विप्र: सन् क्षत्रियार्थमहं कथम् ।।६३।।

मुनि ने कहा कि तू महान् दुष्ट है। तुझे यह भी नहीं दिखाई देता कि मैं ब्राह्मण होकर क्षत्रिय को कैसे दान दे सकता हूँ।

ब्रह्मणा भृगवे दत्ता भृगुणा मह्यमर्पिता।
इयं बैकुण्ठजा धेनु: त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।।६४।।

इस गाय को ब्रह्मा ने भृगु को दिया और भृगु ने मुझे दिया। बैकुण्ठ में उत्पन्न हुई यह धेनु तीनों लोकों में दुर्लभ है।

क्षणेन भस्मसात्कर्तुं शक्तोऽहमतिथिं बिना ।
गृहं गच्छ महामूर्ख मम क्रोधं न वर्धय ।।६५।।

तू अतिथि है वरना मैं क्षण भर में भस्म कर सकता हूँ । महामूर्ख अपने घर जा और मेरे क्रोध को न चढ़ा ।

मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा स्वमनोरथघातकम् ।
जगाम सैन्यमध्ये स कोपप्रस्फुरिताधरः ।।६६।।

अपने मनोरथ को विफल करनेवाले मुनि के इस वचन को सुनकर राजा क्रुध होकर अपनी सेना में चला गया ।

किंकरान् बलिनः स्वीयान् सर्वानाहूय दुर्मतिः ।
प्रेषयामास मुन्यन्ते धेनुमानयितुं बलात् ।।६७।।

उस दुर्बुद्धि ने अपने समस्त बलवान् सेवकों को बुलाकर गाय को बलपूर्वक लाने के लिए मुनि के पास भेजा ।

कल्पवृक्षसमो राजा लुलुभे मुनिधेनवे ।
जानताऽजानता वापि भवितव्यं न वार्यते ।।६८।।

वह राजा जोकि अन्यजनों की मनोकामना पूरी करने में स्वतः कल्पवृक्ष के तुल्य था मुनि की गाय के लिए ललचा गया । जानते हुए अथवा न जानते हुए होनी को नहीं टाला जा सकता ।

मुनिस्तु कपिलापार्श्वं जगाद भृशमातुरः ।
प्रत्यासन्नाः तस्यनाः दृष्ट्वा कर्तव्यविमूढधी ।।६९।।

सैनिकों को आया हुआ देखकर मुनि किंकर्तव्यविमूढ होगए और कपिला के पास जाकर दुःखित होकर बोले ।

दु:खितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमवोचत ।
मया दत्तेन सैन्येन मुने त्वंजय सैनिकान् ॥७०॥

ऋषि को दु:खित देखकर सुरभि ने कहा कि हे मुने ! मेरे द्वारा दिए गए सैनिकों से तुम इन सैनिकों को जीतो ।

इत्युक्त्वा कामधेनु: सा सुषाव विविधान्यपि ।
शस्त्रास्त्रधारि सैन्यानि सूर्यं तुल्यप्रभाणिच ॥७१॥

यह कहकर कामधेनु ने सूर्य के समान तेजस्वी शस्त्रास्त्रधारी विविध प्रकार के सैनिक उत्पन्न किए ।

निर्गता: कपिलाधेनो: वक्त्रात् कोटिस्तुखड्गिनाम् ।
नासिकाया: विनिसस्त्रे पञ्चकोटिस्तु शूलिनाम् ॥७२॥

कपिलाधेनु के मुख से एक करोड़ खंगधारी एवं नासिका से पांच करोड़ शूलधारी सैनिक निकले ।

लोचनाभ्यां विनिर्याता: शतकोटिधनुर्धरा: ।
शतकोटि गदाहस्ता: पृष्ठदेशाद्विनि:सृता: ॥७३॥

दोनों आँखों से सौ करोड़ धनुर्धारी निकले तथा पृष्ठदेश से सौ करोड़ गदाधारी निकले ॥

वक्षस्थलाद् विनिर्याता: कोटिश: शक्तिधारिण: ।
कपालान्नि: सृता: वीरा: कोटिशो दण्डरक्षका: ॥७४॥

वक्षस्थल से करोड़ों, शक्तिधारी तथा कपाल से करोड़ों दण्डधारी सैनिक निकले ।

विनि:सृतं च पादाभ्यां वाघभाण्डसहस्त्रकम् ।
जंघादेशाद् विनिर्याता: कोटिशो राजपुत्रका: ॥७५॥

पैरों से सैंकड़ों वाछ निकले । तथा जंघाप्रदेश से करोड़ों राजपुत्र निकले ।

गुह्यदेशाद्विनिर्याताः कोटिशोम्लेच्छजातयः ।
एवंदत्त्वा महत्सैन्यं निर्भयं साकरोन्मुनिम् ॥७६॥

गुह्यदेश से म्लेच्छ जाति के करोड़ों वीर निकले । इस प्रकार बहुत बड़ी सेना प्रस्तुत करके उसने मुनि को भयरहित कर दिया ।

कामधेनुर्जगादेदं जमदग्निं मुनिं प्रति ।
युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न याहि रणस्थले ॥७७॥

कामधेनु ने जमदग्नि ऋषि से कहा कि सैनिक जब युद्ध करें किन्तु ग्राप युद्धस्थल में न जाएं ।

स च संप्राप्त सेनौघः पूर्णकामोऽभवन्मुनिः ।
तस्यास्तु कपिलाधेनो र्निरुपाधि कृपा लवात् ॥७८॥

कामधेनु की ग्रहैतुकी कृपा से मुनि को ग्रसंख्य सैनिकों की प्राप्ति हुई ग्रौर वे कृतकृत्य हो गए ।

मुनिप्रेषित सेनाभिः सर्वाः सेना महीपतेः ।
क्षयं जग्मुः क्षणादेव नैकशेषाविशेषता ॥७९॥

मुनि द्वारा भेजी गई सेनाग्रों ने क्षणभर में राजा की सेना को नष्ट कर दिया ग्रौर उसमें से एक भी नहीं बचा यह विशेष बात हुई ।

नृपेण प्रेषितो दूतः पुनरेत्य न्यवेदयत् ।
कपिला सैन्य विजयं स्व सैन्यस्यपराजयम् ॥८०॥

राजा द्वारा भेजे गए दूत ने वापिस लौटकर कामधेनु के सैनिकों की विजय ग्रौर ग्रपने सैनिकों की पराजय की सूचना दी ।

आश्चर्यं स परं मेने मुनिधेन्वोः प्रभावतः ।
स्वीयाया वीरसेनायाः पराजय विलोकनात् ॥८१॥

मुनि की गाय के प्रभाव से अपनी वीर सेना की पराजय देखकर उसे वहुत आश्चर्यं हुआ ।

सबलो भवति सुदुर्बलो लब्ध्वा समय बलम् ।
प्राप्य तदेव हि दुर्बलो जेतुं सबलमलम् ॥८२॥

समय के फेर से सबल भी दुर्बल हो जाता है और उसी समय के कारण दुर्बल सबल को भी जीतने में समर्थं हो जाता है ।

समाप्तः प्रथमः सर्गो निसर्गोज्ज्वल एष हि ।
त्रयोदश प्रवन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥८३॥

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस पवित्र काव्य में स्वभावतः उज्ज्वल यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ।

इति परशुराम दिग्विजये प्रथमः सर्गः ॥

अथ द्वितीयः सर्गः

धैर्यं धृत्वामहावीर्यः कार्तवीर्यार्जुनो नृपः।
दूतद्वाराऽनयामास सैन्यान्यन्यानिसत्वरम् ॥१॥

धैर्य धारण करके महावली कार्तवीर्य ने शीघ्र ही दूत के द्वारा अन्य सेनाएँ बुलाई ।

महासेनां समायासां दृष्ट्वा दूतं व्यसर्जयत्।
जमदग्नेर्मुनेः पार्श्वे युद्धाय कृतनिश्चयः ॥२॥

वहुत बड़ी सेना को आया देखकर युद्ध के लिए कृतसंकल्प राजा ने जमदग्नि ऋषि के पास दूत भेजा ।

दूतो गत्वा मुनिं प्राह शृण्वर्षे राजवाञ्छितम्।
युद्धं वा देहि धेनुं वा मह्यं चातिथये तव ॥३॥

दूत ने जाकर कहा कि हे मुने आप राजा की इच्छा को सुने या तो आप मुझ अतिथि को गाय दो या मुझसे युद्ध करो ।

दूतस्य वचनं श्रुत्वा हसित्वा मुनिपुंगवः।
नीतिसंवलितां वाचं हितामेनमवोचत ॥४॥

दूत के वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने हंसकर नीतियुक्त हितकारी वचन कहे ।

दृष्टो नृपो निराहारः समानीतो मयागृहम्।
विविधान्नं यथाशक्यं भोजितः सेनयान्वितः ॥५॥

राजा को भूखा प्यासा देखकर मैं उसे आश्रम में ले आया एवं यथाशक्य सेना सहित तरह तरह के पदार्थ खिलाए ।

सोऽधुना याचते धेनुं राजा मत्प्राणतोऽधिकाम् ।
दातुं तामक्षमो दूत युद्धं दास्यामि भूभृते ।।६।।

अब वह राजा प्राणों से भी अधिक प्यारी गाय मुझसे मांग रहा है । हे दूत ! उसे देने में तो मैं असमर्थ हूँ किन्तु युद्ध करने के लिए मैं तैयार हूँ ।

मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा गत्वा स्वनृपसन्निधौ ।
सर्वं न्यवेदयद्राज्ञे दूतो यन्मुनिनोदितम् ।।७।।

मुनि के यह वचन सुनकर दूत अपने राजा के पास चला गया और जो कुछ उन्होंने कहा था वह राजा से कह दिया ।

मुनिश्च कपिलामाह किंकर्त्तव्यं मयाधुना ।
कर्णधारं बिना नौका तथा सैन्यं च मां बिना ।।८।।

मुनि ने कपिला से पूछा कि अब मुझे क्या करना चाहिए । जैसे मल्लाह के विना नाव होती है उसी प्रकार मेरे विना मेरी सेना हो

श्रुत्वा तु कपिला तस्मसर्वाण्यस्त्राण्यदात्क्षाणात् ।
युद्धशास्त्रोपदेशं च सन्धानं चोपयोगिकम् ।।९।।

यह सुनकर कामधेनु ने तत्क्षण ही सब प्रकार के अस्त्र उन्हें प्रदान कर दिए युद्ध शास्त्र का उपदेश दिया तथा शस्त्रों की प्रयोगविधि भी समझाई ।

ध्रुवं जेष्यसि संग्रामे न मे कश्चिद्धि संशयः ।
अमोघास्त्राहते ते न मृत्युभीतिश्च विद्यते ।।१०।।

संग्राम में आप अवश्य ही जीतेंगे इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है तथा अमोघ अस्त्र के विना मृत्यु का भय भी तुझको नहीं है ।

मुनिश्चापि स्वसैन्यानि सज्जीकृत्य रणस्थले ।
आजगाम नरेशश्च द्वयोर्युद्धमभून्महत् ॥११॥

मुनि भी अपनी सेना को तैयार करके रणस्थल में आगए और राजा भी । उन दोनों में घोर युद्ध हुआ ।

राजसैन्यं जितं सर्वं कापिल्पासेनया क्षणात् ।
राज्ञो रथं धनुश्चैव चिच्छेद मुनिपुंगवः ॥१२॥

कामधेनु की सेना ने क्षणभर में राजा की सारी सेना को जीत लिया एवं मुनि श्रेष्ठ ने राजा का रथ और धनुष तोड़ दिया ।

किंचित्सैन्यं मृतं राज्ञः किंचिच्चैवपलायितम् ।
मूर्च्छितश्चा भवद्राजा मुनीन्द्रस्य प्रभावतः ॥१३॥

राजा की कुछ सेना मारी गई और कुछ भाग गई । मुनि के प्रभाव से राजा भी मूर्च्छित हो गया ।

दयासंयुक्तचित्तेन चैतन्यं प्रापितो नृपः ।
कमण्डलुजलं क्षिप्त्वा क्षमाशीलाः हि भूसुरा ॥१४॥

मुनि ने दया करके कमण्डल का जल छिड़ककर राजा को पुनः चेतना प्रदान की । ब्राह्मण स्वभावतः क्षमाशील होते हैं ।

नवनीतोपमं चेतो ब्राह्मणानां स्वभावतः ।
क्षत्राणां मरम संकाशं निष्ठुरं भवति स्वतः ॥१५॥

ब्राह्मणों का हृदय स्वभावतः नवनीत के समान कोमल होता है और क्षत्रियों का स्वभावतः पत्थर के समान कठोर होता है ।

गृहं गच्छाऽग्रहं त्यक्त्वा धृतिं धृत्वा धराधिप ।
रणं वा कामधेनुं वा देहि नान्यवोचत ॥१६॥

मुनि बोले राजन् आग्रह छोड़ो धैर्य धारण करो और अपने घर

जाओ । राजा ने कहा कि या तो मुझे युद्ध प्रदान करो अथवा कामधेनु और कुछ मुझे नहीं चाहिए ।

श्रुत्वेदं पुनरप्याह मुनिर्वाक्यं नृपोदितम् ।
नैतत् त्वत्सदृशं राजन् दृशं धेनोः निवर्तय ॥१७॥

राजा के कथन को सुनकर मुनि ने पुनः कहा कि हे राजन् यह कथन आपके उपयुक्त नहीं है आप अपने मन को गाय की ओर से हटा लें ।

त्वां च दृष्ट्वा निराहारं समानीय निजाश्रमम् ।
आदरं कृतवानस्मि यथाशक्यं महीपते ॥१८॥

भूखा प्यासा देखकर मैं आपको आश्रम में ले आया तथा यथाशक्ति सत्कार किया ।

साम्प्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा कमण्डलु जलान्मया ।
प्रदायि चेतना तुभ्यं नैतत्वक्तुं तवोचितम् ॥१९॥

इस समय मूर्च्छित देखकर मैंने कमण्डल के जल से आपको चेतना प्रदान की है । अतः ऐसा कहना आपके योग्य नहीं है ।

जघानास्त्रैर्मुनिं कोपात् राजा कालविमोहितः ।
कपिलादत्त शस्त्रेण सोऽपि तं मूर्च्छितं व्यधात् ॥२०॥

काल से मोहित हुए राजा ने कोप से मुनि पर प्रहार किया । मुनि ने भी कपिला द्वारा प्रदत्त शस्त्र से आघात करके उसे मूर्च्छित कर दिया ।

पुनश्च चेतनां लब्ध्वा नृपो ब्रह्मास्त्रमाददे ।
मुनिर्निर्वापयामास वारुणास्त्रेण तन्मुदा ॥२१॥

पुनः चेतना आने पर राजा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया । मुनि वारुणास्त्र से उसका निराकरण कर दिया ।

मुन्यन्ते प्रेषयामास वारुणास्त्रं क्रुधा नृप।
तत्क्षणं शमयामास गान्धर्वास्त्रप्रयोगतः ॥२२॥

क्रुद्ध होकर राजा ने मुनि पर वारुणास्त्र का प्रयोग किया। मुनि ने गान्धर्वास्त्र के प्रयोग से उसका क्षणभर में शमन कर दिया।

नागास्त्रं पुनरादाय मुनिं ताडितवान्नृपः।
स मुनिः गारुड़ास्त्रेण विफलं तन्मुदा व्यधात् ॥२३॥

फिर राजा ने नागास्त्र का प्रयोग किया। मुनिः ने गरुड़ास्त्र के प्रयोग से उसको विफल कर दिया।

माहेश्वरं नृपः शस्त्रमक्षिपन्मुनिमस्तके।
तदपि वैष्णवास्त्रेण निरस्तं कृतिनार्षिणा ॥२४॥

फिर राजा ने माहेश्वरास्त्र का प्रयोग राजा पर किया किन्तु कुशल ऋषि ने उसको वैष्णावास्त्र से विफल कर दिया।

पुनर्नारायणास्त्रेणप्रहारं कृतवान् नृपे।
अभ्रे दीप्तप्रभं वीक्ष्य राजा तस्मै नमो व्यधात्ः ॥२५॥

पुनः मुनि ने नारायणास्त्र से राजा पर प्रहार किया। उसे आकाश में देदीप्यमान् देखकर राजा ने उसे प्रणाम किया।

ऊर्ध्वं तत् भ्रमणं कृत्वा क्षणं दीप्त्वा दिशोदश।
प्रलयाग्निज्वाल तुल्यं तु स्वयं शान्ति मुपागमत् ॥२६॥

ऊपर आकाश में चक्कर खाते हुए दशों दिशाओं को क्षणभर प्रकाश करके प्रलयाग्नि के तुल्य वह स्वयं ही शान्त हो गया।

स मुनिः जृम्भणास्त्रं च तत्याज नृपतिं प्रति।
संप्राप्य महतीं निद्रां सुप्तोऽभूत्स मृतोयथा ॥२७॥

मुनि ने राजा के प्रति जृम्भणास्त्र का प्रयोग किया जिससे उसे गहरी नींद आगई और इस प्रकार सो गया मानो मृत हो।

निद्रितं नृपतिं दृष्ट्वा ह्यर्धचन्द्रेण तत्क्षणम् ।
चिच्छेद सारथिं राज्ञो यानं बाणासनं मुनिः ॥२८॥

राजा को सोता हुआ देखकर मुनि ने तत्क्षण ही अर्धचन्द्राकार बाण से राजा के सारथि, रथ एवं धनुष को नष्ट कर दिया ।

मुकुटं च क्षुरप्रेण छत्रं सन्नाहमेव च ।
अस्त्रं शस्त्रं तुरंगांश्च राज्ञः खण्डितवान्मुनिः ॥२९॥

मुनि ने क्षुरप्र से राजा का मुकुट छत्र, कवच अस्त्र शस्त्र एवं घोड़े नष्ट कर दिए ।

मुनिस्तं बोधयामास स्वीय शक्त्याऽथ लीलया ।
निद्रितं सकलं सैन्यं जृम्भणास्त्रस्य तेजसा ॥३०॥

मुनि ने अपनी शक्ति से राजा को एवं समस्त सेना को जृम्भणास्त्र के प्रभाव से समस्त सुप्त सेना को पुनः चेतनायुक्त कर दिया ।

दर्शयित्वा नृपं सर्वं मोचयामास तत्क्षणम् ।
शुभाशिषं ततो दत्त्वा गृहं गच्छेत्युवाच सः ॥३१॥

राजा को सब कुछ दिखाकर क्षणभर में ही मुक्त कर दिया और आशीर्वाद देकर घर जाने के लिए कहा ।

राजा कोपात्समुत्थाय शूलमादाय सत्वरम् ।
चिक्षेप मुनये शक्त्या मुनिस्तच्चाप्यखण्डयत् ॥३२॥

राजा क्रुद्ध होकर उठा और शूल से मुनि पर बलपूर्वक प्रहार किया किन्तु मुनि ने उसको भी नष्ट कर दिया ।

एतस्मिन्नेव समये ब्रह्मागत्य रणांगणे ।
द्वयोः प्रीतिं स्ववाक्येन कारयामासयत्नतः ॥३३॥

उसी बीच ब्रह्मा जी युद्ध के मैदान में आगए और अपने वचनों से दोनों में सन्धि करा दी ।

मुनी राजा च ब्रह्मा च जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति ।
एवं युद्धविरामोऽभूत्तयोर्ब्रह्मनिदेशतः ॥३४॥

मुनि राजा एवं ब्रह्मा अपने अपने स्थान को चले गए और इस प्रकार ब्रह्मा जी की आज्ञा से युद्ध बंद हो गया ।

गतः सर्गो द्वितीयोऽयमद्वितीयो निजैर्गुणैः ।
त्रयोदश प्रबन्धानां भ्रातः काव्यस्पचैतस्य ॥३५॥

तेरह ग्रन्थों की रचना करने वाले कवि के इस पवित्र काव्य का गुणों में अद्वितीय, द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ।

इति परशुराम दिग्विजये द्वितीयः सर्गः ।

अथः तृतीय-सर्गः

कार्तवीर्यः हरिं स्मृत्वा शोकार्तः स्वपराजयात् ।
पुनर्जगाम तत्रैव प्रतीकारेच्छयाऽश्रमेन् ।।१।।

अपनी पराजय से शोकाकुल राजा कार्तवीर्य भगवान् का स्मरण करके पुनः बदला लेने की इच्छा से जमदग्नि ऋषि के आश्रम की ओर गया ।

रथानां च चतुर्लक्षं रथीनां दशलक्षकम् ।
सेनयाऽसंख्ययायुक्तः शक्तः त्रैलोक्य घातने ।।२।।

चार लाख रथ और दस लाख रथारोहियों की अपार सेना से युक्त वह त्रिलोकी को मारने में समर्थ था ।

सर्वतो वेष्टयामास जमदग्न्याश्रमं नृपः ।
सेनाशब्दैर्वाद्यशब्दैर्महाकोलाहलैस्तथा ।।३।।
आश्रमास्थाः जनास्सर्वे मूर्च्छा मापुर्भयाकुला ।
कुटीरं च प्रविश्यारं जग्राह कपिलां नृपः ।।४।।

राजा ने जमदग्नि के आश्रम को सब ओर से घेर लिया । सेना तथा उसके वाद्यों के भारी कोलाहल से आश्रमस्थित सारे लोग भय से मूर्च्छित हो गए । तथा तुरन्त ही राजा ने कुटी में प्रवेश करके कपिला धेनु को पकड़ लिया ।

गृहीत्वा तां बलाद्धेनुं यदा नेतुमियेष सः ।
उत्थाय धनुरादाय तं रुरोध तदा मुनिः ।।५।।

बलपूर्वक पकड़कर जब वह गाय को ले जाने लगा तब मुनि ने धनुष लेकर उसे रोका ।।

नृपस्तु प्रथमं ह्येव सज्जः संग्रामहेतवे।
चच्छाद शरजालेन तं मुनिं भूयसा रुषा ।।६।।

युद्ध के लिए पहले से ही तैयार राजा ने बड़े गुस्से से मुनि को बाणों से आच्छादित कर दिया।

उद्यतं सकलं सैन्यं नृपं च कुपितो मुनिः।
निस्संज्ञं कृतवान्मन्त्रैः खण्डयित्वा च तच्छरान् ।।७।।

उनके सारे बाणों को काटकर कुपित मुनि ने मन्त्रों से उन्हें अचेत कर दिया।

क्षणात्संज्ञां च संप्राप्य सर्वेऽपि मुनिमस्तके।
शस्त्रजातं यथालब्धं तथा ते चिक्षिपुर्भृशम् ।।८।।

थोड़ी ही देर में चेतना प्राप्त करने पर वे जो भी शस्त्र हाथ में आया उसे मुनि पर फेंकने लगे।

मुनिःप्रायुङ्क्त दिव्यास्त्रं नृपोः वव्रश्च लीलया।
नृपः चिक्षेप शूलं तान्मुनिना खण्डितं द्रुतम् ।।९।।

मुनि ने दिव्यास्त्र का प्रयोग किया राजा ने आसानी से उसे काट दिया। राजा ने शूल चलाया मुनि ने शीघ्र ही उसे खण्डित कर दिया।

निबद्धा मन्त्रजालेन मुनिना शक्तिशालिना।
सेनाः पलायनायापि नैव शक्ताः नृपस्य ताः ।।१०।।

शक्तिशाली मुनि के मन्त्रों से आबद्ध राजा की वे सेनाएं भागने में भी असमर्थ हो गई।

सजृम्भास्त्रेण राजानं कृत्वा ससेनं चनिद्रितरम्।
पदास्वां धेनुमादाय गन्तुमैच्छद् गृहं मुनिः ।।११।।

जृम्भास्त्र के प्रभाव से राजा को सेना सहित मूर्च्छित करके मुनि ने गाय को लेकर आश्रम जाने की इंच्छा की।

एतस्मिन्नन्तरे दैवाच्चेतनां प्राप्य भूपतिः ।
मुनिं निवारयामास गृहीत्वा सशरं धनु ॥१२॥

इसी बीच संयोगवश राजा सचेत हो गया और वाण सहित धनुष लेकर उसने मुनि को रोका ।

धेनुश्चावसरं लब्ध्वा ससार स्वयमाश्रमम् ।
युद्धं कर्तुं मुनिस्तस्थौ सह राज्ञा रणांगणे ॥१३॥

अवसर पाकर कामधेनु आश्रम में चली गई और राजा के साथ युद्ध करने के लिए मुनि वहीं डटे रहे ।

आविष्चकार ब्रह्मास्त्रं संयुगे पृथिवीश्वरः ।
तेनैवास्त्रप्रयोगेण शमयामास तन्मुनिः ॥१४॥

युद्ध में राजा ने ब्रह्मास्त्र को प्रकट किया । मुनि ने ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से ही उसे शान्त कर दिया ।

दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः ।
रथं च सारथिञ्चैव बिभेद कवचं तथा ॥१५॥

मुनि ने दिव्यास्त्र के प्रयोग से राजा का बाणसहित धनुष, रथ एवं सारथि तथा कवच नष्ट कर दिया ।

धिक् धिक् क्षत्रबलं नूनं ब्रह्मतेजो वलं बलम् ।
एकेन ब्राह्मणेनैव ससेनोऽहं पराजितः ॥१६॥

क्षत्रिय के बल को धिक्कार है निश्चय ही ब्रह्म तेज का बल ही बल है जो एक ही ब्राह्मण ने मुझको सेना सहित पराजित कर दिया ।

इदानीं किञ्च कर्तव्यं नैव स्फुरति चेतसि ।
अमोघास्त्रं स सस्मार दत्राप्तं सहसा रणे ॥१७॥

अब क्या किया जाए यह उसकी समझ में नहीं आया सहसा ही उसे दत्तात्रेय से प्राप्त अमोघस्त्र का स्मरण हो आया ।

दत्तात्रेयं नृप-स्मृत्वा गृहीत्वा दक्षिणे करे।
दत्तात्रेयेण या दत्तानां शक्ति द्यमक्षिपन्मुनौ ॥१८॥

दत्तात्रेय का स्मरण करके दत्तात्रेय से प्राप्त शक्ति को दक्षिण हाथ में लेकर राजा ने उसे मुनि पर चला दिया।

तां वीक्ष्य शक्तिमायान्तीं हा हा चक्रुर्दिवौकसः।
मुनयः सिद्धगन्धर्वाः मुहुश्चक्रन्दिरेऽम्बरे ॥१९॥

उस शक्ति को आता हुआ देखकर देवता हाहाकार कर उठे और आकाश में मुनि, सिद्ध एवं गन्धर्व व्याकुल हो गए।

मुनौ पपात सा शक्तिरेक पुंसोविघातिनी।
दत्ताय हरिणा दत्ता दत्तेनास्मै नृपाय या ॥२०॥

भगवान् विष्णु ने दत्तात्रेय को और दत्तात्रेय ने इस राजा को जो एक व्यक्ति का नाश करनेवाली शक्ति दी थी वह मुनि पर जा पड़ी।

सा विदार्य मुनेर्वक्षः श्रीगोबिन्दमविन्दत।
गाढमूर्च्छां मुनिः प्राप्य प्राणास्तत्याज सत्वरम् ॥२१॥

मुनि के वक्षस्थल को फाड़कर वह शक्ति भगवान् विष्णु के पास चली गई। घोर मूर्च्छा को प्राप्त होकर उन्होंने तत्काल ही प्राण छोड़ दिए।

युद्धे मृतं मुनिं श्रुत्वा कपिला शोकविह्वला।
रुदन्ती हा मुने कृत्वा बैकुण्ठं कुण्ठिक्ता व्रजत् ॥२२॥

मुनि को युद्ध में मारा गया सुनकर कपिला शोक से विह्ल हो गई और हा मुनि ! कहकर निरन्तर रोती हुई बैकुण्ठ चली गई।

सर्वं सा कथयामास वृत्तं दैत्यारिसन्निधौ।
तदश्रुबिन्दुभिर्लोके नानारत्न गणोऽभवत् ॥२३॥

भगवान् विष्णु के पास जाकर उसने सारा वृत्तान्त कहा। उसके अश्रु विन्दुओं से मर्त्यलोक में नाना प्रकार के रत्न बन गए।

विष्णुना ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवेपुरा।
सा प्रेम्णा पुष्करे धेनुर्भृगुणा जमदग्नये ॥२४॥

भगवान् विष्णु ने यह गाय ब्रह्मा जी को, ब्रह्मा ने भृगु को और पुष्कर तीर्थ में वही गाय भृगु ने प्रेम से जमदग्नि को प्रदान की थी।

कार्तवीर्यो धराधीशः भवितव्येन प्रेरितः।
जमदग्निं मुनिं हत्वा भूरिताप मवाप वै ॥२५॥

दैव से प्रेरित हुआ राजा कार्तवीर्य जमदग्नि मुनि का वध करने के उपरान्त पश्चाताप से व्याकुल हो गया।

प्रायश्चित्तं पुनः कृत्वा बारं बारं हरिं स्मरन्।
बोधयित्वा स्वसैन्यानि स्वकं धाम जगाम सः ॥२६॥

बारम्बार भगवान् का स्मरण करता हुआ पुनः पुनः प्रायश्चित करके वह अपनी सेना को प्रबुद्ध करके अपने नगर चला गया।

सर्गो गतः तृतीयोऽयं रमणीयो निजैर्गुणैः।
त्रयोदश प्रवन्धानां भ्रातुः काव्यस्य चैतस्य ॥२७॥

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस पवित्र काव्य में अपने गुणों से रमणीय तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

इति परशुराम दिग्विजये तृतीयः सर्गः।

अथ चतुर्थः सर्गः

पुरीं प्रतिगते तस्मिन्कार्तवीर्यें नृपाधमे ।
आश्रामाद् वहिरागत्य रेणुका समलोकयत् ॥१॥

दृष्ट्वा विक्षत सर्वांगं रुधिरेण परिप्लुतम् ।
निःसंज्ञं निर्गतप्राणं भूतलेपतितं पतिम् ॥२॥

अधम राजा कार्तवीर्य के अपने नगर को लौट जाने के बाद रेणुका ने आश्रम से बाहर आकर रुधिर से सने हुए घावों से भरे हुए अपने मृतपति को पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखा ।

विललाप भृशं साध्वी रेणुका रेणुधूसरा ।
अश्रुपूर्णमुखी सा च सुमुखी शोकविह्वला ॥३॥

धूल में सनी हुई अश्रुपूर्णमुखी साध्वी शोकविह्वल रेणुका ने बहुत विलाप किया ।

चुक्रोश रामरामेति यावद्दुःखेन कर्शिता ।
आजगाम क्षणाद्रामः हृदयेन विदूयता ॥४॥

दुःख से जब वह राम राम चिल्ला रही थी उसी समय हृदय से दुःखित होते हुए परशुराम वहाँ आगए ।

रामस्य पुरतः साध्वी भर्तृव्यसन विक्लवा ।
त्रिः सप्तकृत्वो हस्ताभ्यां स्वमुरः समताडयत् ॥५॥

पति के दुःख से दुःखित साध्वी ने परशुराम के सामने इक्कीस बार अपनी छाती को पीटा ।

त्रिः सप्तकृत्वो भो मातः त्वया वक्षोयदाहतम् ।
तावत्संख्यान् संख्य हंक्षत्रान् हन्तास्मि स्यशसंयम् ।।६।।

परशुराम ने कहा कि हे माता इक्कीस बार जो तुमने अपनी छाती को पीटा है तो मैं निश्चय ही इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश करूंगा।

कार्तवीर्यं हनिष्यामि प्रथमं दुर्मदोद्धतम् ।
पितरं तर्पयिष्यामि प्रतिज्ञा क्रियते मया ।।७।।

सर्वप्रथम मैं मदोद्धत कार्तवीर्य को मारूंगा और पिता का तर्पण करूंगा यह मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

अग्निदं गरदं चैव मातृपितृविहिंसकम् ।
गोब्राह्मणस्य हन्तारं यो न हन्ति स दुर्मतिः ।।८।।

आग लगाने वाले को विष देने वाले को माता पिता को मारने वाले को तथा गऊ और ब्राह्मण को मारनेवाले को जो नहीं मारता है वह दुर्बुद्धि है।

सुतान् सर्वान् समाहूय रेणुकोवाच हे सुताः ।
अनुगन्तुमिहेच्छामि स्वपतिं स्वर्गं काम्यया ।।९।।

रेणुका ने अपने सब पुत्रों को बुलाकर कहा कि हे पुत्रो मैं स्वर्ग की इच्छा से अपने पति के साथ ही जाना चाहती हूँ।

अथ सा रेणुका साध्वी पतिं कृत्वास्ववक्षसि ।
चिन्तयन्ती हरिंवित्रे चितामारोढुमिच्छति ।।१०।।

पति का ही स्मरण करती हुई एवं उसे सीने से लगाकर दुःखित साध्वी रेणुका ने चिता पर चढ़ने की इच्छा की।

एतस्मिन्नेव काले तु रेणुकां पुत्रकैः सह ।
संभाष्यातीव गंभीरा वागुवाचाशरीरिणी ।।११।।

इसी बीच पुत्रों सहित रेणुका को सम्बोधित करके गंभीर आकाशवाणी हुई।

माकार्णीः साहसं भद्रे मरणाय कदाचन।
शीघ्रमेव हि ते भर्ता भविष्यति सचेतनः ॥१२॥

हे भद्रे मरने के निमित्त साहस मत करो शीघ्र ही तुम्हारा पति जीवित हो जाएगा।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा धैर्यं धृत्वाच रेणुका।
सर्वे ते तस्थुः कांक्षन्तो जीवनं मुनेः ॥१३॥

आकाशवाणी को सुनकर रेणुका ने एवं उन पुत्रों ने धैर्य धारण किया और मुनि के जीवन की इच्छा करते हुए खड़े रहे।

एतस्मिन्नेव काले तु भृगुर्वंशधरो मुनिः।
यदृच्छयाऽऽगमत्सर्वं वृत्तं ज्ञात्वेद मब्रवीत् ॥१४॥

इसी बीच वंशप्रवर्तक भृगु मुनि वहाँ आए और सारे वृत्तान्त को सुनकर बोले।

को वा कस्य पिता राम को वा कस्य सुतःसदा।
को वा कस्याः पतिर्देवि कास्त्री कस्येति चिन्तय ॥१५॥

हे राम कौन किसका पिता है, कौन किसका सदा बेटा है और हे देवि कौन किसका पति है और कौन किसकी स्त्री है यह विचार करो।

संकेतपूर्वकं नाम प्रातः स्वप्नसमं सुत।
पाञ्चभौतिक देहोऽयं नो मे नो ते न कस्यचिद् ॥१६॥

हे पुत्र संकेतार्थक नाम प्रातःकालीन स्वप्न के समान होते हैं। यह देह पञ्चभूतों की बनी हुई है। यह न मेरी है न तुम्हारी है और न ही किसी और की है।

अद्य वाऽब्दशतान्ते वापञ्चस्वेव मिलिष्यति ।
जीवो नित्यः शाश्वतोऽयं न कदाचिद् विहन्यते ॥१७॥

आज अथवा सौ वर्ष बाद यह पञ्चतत्वों में ही मिल जाएगा। जीव नित्य है शाश्वत है और इसका कभी नाश नहीं होता है ।

भृगोस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकं तत्याज रेणुका ।
तनयाश्चापि रामाद्याः धैर्ययुक्ताः समासत ॥१८॥

भृगु के वचनों को सुनकर रेणुका ने शोक त्याग दिया तथा रामादि पुत्रों ने भी धैर्य धारण किया ।

कृपया जलमादाय मन्त्रविन् मुनिपुंगवः ।
संजीवन्या ख्यमंत्रेण सिषे च प्रोच्चरन्निदम् ॥१९॥

मन्त्रवेत्ता ऋषि ने हाथ में जल लेकर यह कहते हुए संजीवनी विद्या से उसका सेचन् किया ।

यज्ञस्य तपसश्चापि वलं मे यदि विद्यते ।
तेनायं जीवतात् शीघ्रं सुप्तोत्थित इवाचरन् ॥२०॥

यदि मेरे यज्ञ और तप का कोई वल है तो उससे यह शीघ्र ही इस प्रकार जीवित हो जाए मानों सोकर उठा हो ।

एवमुक्तेन वाक्येन तपसा च भृगोर्मुनेः ।
जमदग्निः समुत्तस्थौ राम रामेति च ब्रुवन् ॥२१॥

इस प्रकार के कथन से एवं भृगु मुनि के तप के प्रभाव से जमदग्नि राम राम कहते हुए उठ खड़े हुए ।

दृष्ट्वा चाग्रे स्थितं पूज्यं भृगुं स्वस्य पितामहम् ।
जमदग्निरुवाचेदं सफलं जीवनं मम ॥२२॥

सामने पूज्य पितामह भृगु को देखकर जमदग्नि ने कहा कि मेरा जीवन सफल हो गया (जो मुझे आपके दर्शन हुए) ।

प्रणम्य चाथ सत्कृत्य भृगुं पप्रच्छ भो गुरो।
मयातिथ्यं कृतं तस्य कृतं तेनेदमद्भुतम् ॥२३॥

जमदग्नि ने भृगु को प्रणाम किया और उनका सत्कार किया और पूछा कि हे भगवन्, मैंने तो उस कार्तवीर्य का आतिथ्य किया था और उसने यह विचित्र काम किया। (इसका क्या कारण है ?)।

भृगुरूचे शृणु त्वं हि कारणं तस्य कर्मणः।
शप्तः पुरा वशिष्ठेन नाशाय स महीपतिः ॥२४॥

भृगु ने कहा कि उसके इस आचरण में कारण उसका कर्म है। प्राचीन काल में वशिष्ठ ने इस राजा को शाप दे दिया था कि—

द्विजापराधतो मूढ त्वं हि मृत्युमवाप्स्यसि।
तत्कथं कथनं तस्य भविष्यत्यन्यथा सुत ॥२५॥

हे मूढ, तू ब्राह्मण का अपराध करने के कारण मृत्यु को प्राप्त होगा। तब पुत्र, उनका कथन कैसे मिथ्या हो सकता है ?

अयं रामो महावीर्यो विष्णोरंशः सुतस्तव।
हनिष्यतीमं निःक्षत्रां पृथिवीं च करिष्यति ॥२६॥

तुम्हारा यह बली पुत्र परशुराम विष्णु का अंश है; यह इसका वध करेगा और पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करेगा।

एवमुक्त्वा महाभागः ब्रह्मपुत्रो भृगुर्मुनिः।
यथाऽऽयातस्तथा यातः तेजसः तपसः खनिः ॥२७॥

ऐसा कहकर तेज और तपस्या के आगार ब्रह्मपुत्र भृगु मुनि जैसे आए थे, वैसे ही चले गए।

जनकाग्रे तदा रामः प्रतिज्ञां कृतवानिमाम्।
कार्तवीर्यं निहत्याजौ हनिष्ये क्षत्रमात्रकम् ॥२८॥

तब परशुराम ने पिता के आगे यह प्रतिज्ञा की कि कार्तवीर्य को युद्ध में मारकर मैं क्षत्रियमात्र का वध करूँगा।

तमाह जमदग्निस्तु नैष धर्मः सनातनः।
यदेकस्य कृते वत्स क्षत्रमात्रवधो भवेत् ॥२६॥

जमदग्नि ने कहा कि यह सनातन धर्म नहीं है कि एक व्यक्ति के कारण समस्त क्षत्रियों का वध हो।

रामो जगाद भोस्तात क्षमा दीनेषु साधुषु।
इदानीं क्षत्रियास्सन्ति कार्तवीर्यानुगामिनः ॥३०॥

परशुराम ने कहा कि क्षमा दीन एवं सज्जन व्यक्तियों के विषय में तो उचित है किन्तु इस समय समस्त क्षत्रिय कार्तवीर्य के ही अनुयायी हैं।

अतो मां गमनायाज्ञां सत्वरं देहि भोः पितः।
स उवाच इदं सर्वं ब्रह्माणं तात पृच्छतात् ॥३१॥

अतः हे पिता, आप मुझे जाने की आज्ञा शीघ्र ही प्रदान करें। जमदग्नि ने कहा कि हे महाभाग, जाकर ब्रह्मा जी से पूछो।

यथा वदति लोकेशः तथा कुरु महाव्रत।
तेन सिद्धिं प्रयातासि नान्यथासिद्धिमेष्यसि ॥३२॥

जैसा ब्रह्मा जी कहें वैसा ही करो; उसी से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी, अन्यथा नहीं।

मातरं पितरं नत्वा पर्शुरामो धृतव्रतः।
जगाम ब्रह्मणो लोकमगम्यं प्राकृतैर्जनैः ॥३३॥

ऐसा सुनकर माता-पिता को नमस्कार करके वह ब्रह्मलोक में गए जहाँ प्राकृत व्यक्ति नहीं जा सकते हैं।

तपसां फलदातारं कर्तारं जगतां प्रभुम् ।
तमग्रे वीक्ष्य ब्रह्माणं प्रणनाम भृगूद्वहः ॥३४॥

तप का फल देनेवाले और जगत् को बनाने वाले प्रभु ब्रह्मा को सामने देखकर परशुराम ने उन्हें प्रणाम किया ।

पप्रच्छ कुशलं वेधा हेतुमागमनस्य च ।
पृष्टो रामो यथाभूतं तथा सर्वं न्यवेदयत् ॥३५॥

ब्रह्मा ने कुशलक्षेम और आगमन का कारण पूछा । इस प्रकार पूछे जानेपर परशुराम ने जैसे सब कुछ हुआ था, वह सब बता दिया ।

श्रुत्वा घोरां प्रतिज्ञां तामपूर्वां चतुराननः ।
तत्क्षणं किंचिदूचे नो विस्मयान् मुग्धमानसः ॥३६॥

इस अपूर्व घोर प्रतिज्ञा को सुनकर विस्मित हुए ब्रह्माजी ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया ।

प्रतिज्ञा कठिना तात यां रुषा कृतवान्भवान् ।
तथापि चिन्तयाम्येषा कथं सिद्धिमवाप्स्यति ॥३७॥

तात, क्रोध में आकर जो प्रतिज्ञा तुमने की है वह है तो बहुत दुष्कर, तथापि मैं सोचता हूँ कि किस प्रकार यह पूरी की जा सकती है ।

शिवलोकं प्रयाहि त्वं शिवस्याज्ञामवाप्नुहि ।
त्रैलोक्यविजयं तुभ्यं कवचं स प्रदास्यति ॥३८॥

तुम शिवलोक चले जाओ और उनकी आज्ञा प्राप्त करो । वे तुम्हें त्रैलोक्य-विजय नामक कवच देंगे ।

दिव्यं पाशुपतं चैव तुष्टो दास्यति शंकरः ।
त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां तदा भूमिं करिष्यसि ॥३९॥

प्रसन्न होकर भगवान् शंकर तुम्हें दिव्य पाशुपतास्त्र देंगे। तभी तुम इक्कीस बार भूमि को राजहीन कर सकोगे।

समाप्नोतिस्म मान्योऽयं चतुर्थः सर्ग एष हि।
त्रयोदश प्रबन्धानां भ्रातुः काव्यस्य चैतस्य ॥४०॥

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस पवित्र काव्य में माननीय चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

इति परशुरामदिग्विजये चतुर्थः सर्गः ॥

अथ पंचमः सर्गः

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नत्वा तं च पितामहम् ।
तदुक्त्या च प्रहृष्टः सन् शिवलोकं जगाम सः ।।१।।

ब्रह्माजी के वचन सुनकर प्रमुदित परशुराम उन्हें प्रणाम करके शिवलोक गए ।

लक्षयोजनमूर्ध्वस्थं भासमानं स्वतेजसा ।
वैकुण्ठो दक्षिणेतस्य ध्रुवलोको ह्यधस्तले ।।२।।

वह शिवलोक एक लाख योजन की ऊँचाई पर था और अपने तेज से देदीप्यमान हो रहा था, वैकुण्ठ उसके दक्षिणभाग में था तथा ध्रुवलोक उससे नीचे था ।

समूहो यत्र धेनूनां वांछितार्थकृतां तथा ।
पारिजात : तरूणां च कोटिशो वनराजयः ।।३।।
मणीन्द्रसार - रचितं खचितं मणिवेदिभिः ।
तन्मध्यदेशे राजन्तं स ददर्श शिवालयम् ।।४।।

वहाँ उन्होंने इच्छित अर्थों को पूरा करने वाली कामधेनुओं के समूह को देखा तथा मध्य देश में स्थित पारिजात वृक्षों की पंक्ति से युक्त एवं मणीन्द्रसार-रचित वेदियों से शोभित शिवजी के निवासस्थान को देखा ।

रत्नस्तम्भकपाटैश्च सत्सोपानैर्विभूषितम् ।
द्वारपालाऽऽज्ञया तत्र प्रविष्टः स शिवालये ।।५।।

वह रत्नों से जड़े हुए खंभों एवं किवाड़ों से युक्त था तथा उसमें सुन्दर सीढियाँ थीं । द्वारपाल की आज्ञा से वे शिवालय के अन्दर गए ।

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शंकरं लोकशंकरम् ।
दिव्यज्योतिःस्वरूपं च लोकानुग्रह - विग्रहम् ॥६॥
स्तूयमानं च योगीन्द्रैः सेवितं श्वेतचामरैः ।
धृतवन्तं जटाजालं महाकालं च वक्षसि ॥७॥
तपसां फलदातारं हर्तारं संकटस्य च ।
वामभागे कार्तिकेयं दक्षिणे च गणेश्वरम् ॥८॥
क्रोडे तां पार्वतीं कान्तां पुरतो नन्दिकेश्वरम् ।
दृष्ट्वा नत्वा च तान् सर्वान् स वक्तुमुपचक्रमे ॥९॥

वहाँ उन्होंने लोक का कल्याण करनेवाले किंचित् हास्ययुक्त प्रसन्न वदन दिव्यज्योति-स्वरूप लोकानुग्रहविग्रह भगवान् शंकर को देखा जिनकी योगी स्तुति कर रहे थे, श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे। उन्होंने जटाजूट धारण कर रखा था। महाकाल को वे वक्षस्थल पर धारण किए हुए थे। तपस्या का फल देनेवाले, संकट को दूर करनेवाले भगवान् शिव के वामभाग में कार्तिकेय, दक्षिण भाग में गणेश, सामने नन्दिकेश्वर एवं गोदी में पार्वती जी विराजमान थीं। उन सबको देखकर उन्होंने प्रणाम किया तथा इस प्रकार बोले—

त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम् ।
देव देव महादेव महाशिव महेश्वर ॥१०॥

हे करुणासिन्धो, दीनबन्धो, देव-देव, महादेव, महाशिव, महेश्वर मुझ दीन की आप रक्षा करें।

इन्द्रादयः सुरगणाः कलया तव सम्भवाः ।
स्थावरजंगमाश्चैव त्वां नमामि सदाशिवम् ॥११॥

इन्द्रादि देवता एवं स्थावर तथा जंगम पदार्थ तुम्हारी ही कला से उत्पन्न हुए हैं। हे सदाशिव, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

परशुरामो वदन्नेवं पपात चरणाम्बुजे ।
आशीर्वादं ददौ तस्मै सुप्रसन्नो महेश्वरः ॥१२॥

इस प्रकार कहते हुए परशुराम चरणों में गिर गए । भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया ।

जगाद शंकरः कस्त्वं वटो कस्य मुनेः सुतः ।
किं च ते करणीयं मे वद सर्वं मनोरथम् ॥१३॥

शंकर ने कहा कि हे बटुक, तुम कौन हो ? किस मुनि के पुत्र हो ? क्या करना चाहते हो ? मुझे सब कुछ बताओ ।

रामो जगाद भो देव जमदग्नेरहं सुतः ।
माता मे रेणुका साध्वी परशुरामोऽस्मि नामतः ॥१४॥

परशुराम ने कहा कि हे भगवन्, मैं जमदग्नि का पुत्र हूँ, रेणुका मेरी माता है तथा मेरा नाम परशुराम है ।

मृगयाऽऽगतभूपस्य कार्तवीर्यस्य मे पिता ।
आतिथ्यं कृतवान् सम्यक् कपिलादत्तवस्तुभिः ॥१५॥

मृगया के लिए आए हुए राजा कार्तवीर्य का मेरे पिता ने कामधेनु द्वारा प्रदत्त वस्तुओं द्वारा यथोचित सत्कार किया ।

मत्तातं घातयामास कपिलालोभतो नृपः ।
दुःखिता तं मृतं दृष्ट्वा वैकुण्ठमगमच्चसा ॥१६॥

राजा ने कपिला के लोभ से मेरे पिता को मार डाला । उनको मरा हुआ देखकर कामधेनु दुःखित होकर वैकुण्ठ चली गई ।

त्रिःसप्तकृत्वो माता मे उरस्ताडंरु रोद च ।
दृढशोकं न तत्याज मम सान्त्वनयापि सा ॥१७॥

मेरी माता इक्कीस बार सीने पर हाथ मार-मारकर रोई और मेरे सान्त्वना देने पर भी उसने शोक नहीं छोड़ा ।

मया कृता प्रतिज्ञेयं मातुर्दु:खेन दुष्करा ।
त्रि:सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिमाम् ॥१८॥

माता के दुःख से मैंने यह दुष्कर प्रतिज्ञा की है कि मैं इस पृथ्वी को इक्कीस बार राजहीन करूँगा ।

कार्तवीर्यं हनिष्यामि रणे मत्तातघातकम् ।
इत्येवं शरणं यातोऽस्म्यद्य तेऽहं जगत्पते ॥१९॥

मैं अपने पिता को मारनेवाले कार्तवीर्य को युद्ध में मारूँगा; इसीलिए जगत्पते, मैं आपकी शरण में आया हूँ ।

विस्मयं परमं यातौ पार्वतीपरमेश्वरौ ।
श्रुत्वा स्मित्वा तदा गौरी एवं वक्तुं प्रचक्रमे ॥२०॥

यह सुनकर शिव-पार्वती को बहुत विस्मय हुआ । तब पार्वती जी मुस्कराकर इस प्रकार बोलीं—

क्व वटुस्त्वं मुने: पुत्र कार्तवीर्यो बली क्व च ।
हन्तुमिच्छसि नि:शस्त्र: साहसं ते प्रशस्यते ॥२१॥

हे मुनिपुत्र; कहाँ तुम और कहाँ बली राजा कार्तवीर्य ! नि:शस्त्र होते हुए भी तुम उसका वध करना चाहते हो, हम तुम्हारे साहस की प्रशंसा करते हैं ।

तस्मै प्रदत्तं दत्तेन दैत्यारे: कवचं वटो ।
शक्तिश्चाव्यर्थतायुक्ता यया ते निहत: पिता ॥२२॥

उसको तो दत्तात्रेय ने भगवान् विष्णु का कवच और अव्यर्थ शक्ति प्रदान की है जिससे तुम्हारे पिता का वध हुआ है ।

अत: वत्स गृहं गच्छ शंकर: किंकरिष्यति ।
अन्ये भूपाश्च मद्भक्ता: तान्कथं त्वं हनिष्यसि ॥२३॥

अतः वत्स, तुम घर जाओ। इसमें शंकर क्या कर सकते हैं? तथा अन्य राजा, जो कि मेरे भक्त हैं, उन्हें तुम कैसे मारोगे?

स तस्या वचनं श्रुत्वा दुःखाकुलितमानसः।
शीघ्रं किंचिद् विनिश्चित्य पार्वतीं स्तोतुमारभत् ॥२४॥

पार्वती के वचनों को सुनकर परशुराम दुःखित होगए और शीघ्र ही कुछ सोचकर उनकी स्तुति करने लगे।

जय देवि महेशसेविते जय जय दक्षसुते पतिव्रते!
जय माहिषदेहशायिनि जय जयरक्तक रक्तपायिनि ॥२५॥

महेश द्वारा सेवित, दक्ष की पुत्री, महिषासुर की देह पर बैठने वाली, रक्त बीज का रक्तपान करनेवाली आपकी जय हो।

जय चण्डविनाशकारिणि जय जय मुण्डशरीरधारिणि।
जय दानव कालयामिनि जय जय शंकर दिव्यभामिनि ॥२६॥

चण्ड का वध करनेवाली, मुण्ड के शरीर का विदारण करनेवाली, दानवों की काल-रात्रि तथा भगवान् शंकर की दिव्यभामिनि! आपकी जय हो।

जय कालि कपालिमण्डने जय जय शुंभ निशुंभखण्डने।
जय भक्तजनानुकम्पने जय जय पार्वति दिव्यदर्शने ॥२७॥

हे कालि, कपालों के भूषण वाली! हे शुंभ-निशुंभ को मारनेवाली! भक्तजनों पर कृपा करनेवाली! दिव्यदर्शन वाली पार्वती! आपकी जय हो।

जय जय दिव्य सुधाकरवदने जय जय जय कुन्दोज्ज्वल रदने।
जय जय जितचरणद्युतिमदने जय जय जय कृतदुमद कदने ॥२८॥

दिव्य चन्द्रमा के समान मुखवाली, कुन्द के समान उज्ज्वल दाँतों वाली, चरणों की कान्ति से काम को जीतने वाली, दुर्मदों का वध करने वाली! आपकी जय हो।

तस्य तत्स्तवनं श्रुत्वा शंकरः करुणाकरः।
पार्वत्यनुमतिं नीत्वा पर्शुराममभाषत ॥२९॥

उनके इस स्तवन को सुनकर करुणा के भण्डार शंकर, पार्वती से अनुमति लेकर, परशुराम से बोले—

अद्यप्रभृति हे राम त्वं मे पुत्रसमो भवेः।
गुह्यं मन्त्रं प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥३०॥

हे राम, आज से तुम मेरे पुत्र के समान हो। मैं तुम्हें तीनों लोकों में दुर्लभ गोपनीय मन्त्र प्रदान करूँगा।

ईदृशं कवचं तुभ्यं दास्यामि बहु दुर्लभम्।
सहसा यत्प्रभावेण कार्तवीर्यं हनिष्यसि ॥३१॥

मैं तुम्हें एक ऐसा दुर्लभ कवच प्रदान करूँगा जिससे तुम सहज ही कार्तवीर्य का वध कर सकोगे।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीमिमाम्।
जगत्ते यशसा पूर्णं भविष्यति न संशयः ॥३२॥

इक्कीस बार तुम इस पृथिवी को राजा-विहीन करोगे। तुम्हारा यश समस्त संसार में फैल जायेगा, इसमें कोई संशय नहीं है।

इत्युक्त्वा शंकरः तस्मै कवचं दुर्लभं ददौ।
त्रैलोक्यविजयं नाम लभ्यं नो कृपया विना ॥३३॥

यह कहकर शंकर जी ने उन्हें त्रैलोक्य-विजय नामक दुर्लभ कवच दे दिया जोकि कृपा के बिना नहीं मिलता है।

पर्शुं पाशुपतं चैव शस्त्रद्वयमनुत्तमम्।
दत्वा तस्मै तयोः सिद्धिस्थानं चाप्यब्रवीच्छिवः ॥३४॥

परशु और पाशुपत नामक उत्तम अस्त्र भी प्रदान किए तथा उनको सिद्ध करने का स्थान भी बताया।

अयञ्च पञ्चमः सर्गः संपूर्णः पूर्णकामनः ।
त्रयोदश प्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥३५॥

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस पवित्र काव्य में कामनाओं को पूर्ण करनेवाला पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

इति परशुरामदिग्विजये पञ्चमः सर्गः ॥

अथ षष्ठः सर्गः

शिवं नत्वा शिवां चव पर्शु रामो मुदान्वितः ।
पुष्करं तीर्थमागत्य मन्त्रसिद्धिमकल्पयत् ।।१।।

शिवपार्वती को प्रणाम करके हर्षित परशुराम ने पुष्कर तीर्थ में आकर मन्त्र-सिद्धि की ।

स बभूव निराहारो मासं भक्तवरोत्तमः ।
ध्यायन् शिवपदाम्भोजं प्राणरोधं चकार वै ।।२।।

भक्तवर परशुराम शंकर के चरणों का ध्यान करते हुए एक मास पर्यन्त निराहार रहे तथा प्राण-वायु का निरोध किया ।

ददर्श चक्षुरुन्मील्य वियतं तेजसाऽऽवृतम् ।
मध्ये नारायणं साक्षात् द्योतयन्तं दिशो दश ।।३।।

आँखें खोलकर उन्होंने आकाश को तेज से परिपूर्ण देखा तथा उसके मध्य में साक्षात् भगवान् विष्णु को देखा, जोकि दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे ।

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ।
मूर्ध्ना प्रणम्य गोविन्दं रामो वव्रे निजेप्सितम् ।।४।।

किंचित् मुस्कानयुक्त, प्रसन्नवदन, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले भगवान् को प्रणाम करके परशुराम ने अपनी अभिलाषा प्रकट की ।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छामि मेदिनीम् ।
एवमस्तु वरं दत्त्वा स तत्रान्तरधीयत ।।५।।

(कि) मैं इस पृथ्वी को इक्कीस बार-राजाविहीन करना चाहता हूँ । 'ऐसा ही हो' इस प्रकार वर देकर वे अन्तर्हित होगए ।

रामः प्रणम्य मनसा देवं हृष्टो गृहं गतः।
आहूय बन्धुवर्गं स्वं तेनासौ मन्त्रणां व्यधात् ॥६॥

मन में प्रसन्न होकर राम ने उन्हें प्रणाम किया और घर जाकर बन्धुवर्ग को बुलाकर उनके साथ परामर्श किया।

पौर्वापर्यं स्ववृत्तान्तं ज्ञापयित्वा शुभ क्षणे।
रणे गन्तुं निजैर्मित्रै र्बन्धुभिश्च समुद्यतः ॥७॥

शुरू से सारा वृत्तान्त सुनाकर शुभ मुहूर्त में मित्रों एवं बन्धुओं के साथ युद्ध में जाने के लिए तैयार होगए।

पुरः प्रस्थानकाले च शुश्राव भृगुनन्दनः।
मृगेन्द्र - मेघयोर्नादं घण्टादुन्दुभिवादनम् ॥८॥

यात्रा के समय परशुराम ने सामने सिंह और मेघ का शब्द सुना तथा घण्टा एवं दुन्दुभि के स्वर को सुना।

ज्वलत्प्रदीपं बिभ्रन्तीं पतियुक्तां पतिव्रताम्।
गां ददर्श सवत्साञ्च कलशं जलसम्भृतम् ॥९॥

जलते हुए दीपक को लिये हुए पति के साथ पतिव्रता स्त्री को, वत्सयुक्त गाय को एवं जल से भरे हुए कलश को देखा।

अस्तं गते दिवानाथे नर्मदातीरसन्निधौ।
कार्तवीर्यार्जुनाऽभ्यासे तस्थौ रामो निजैर्जनैः ॥१०॥

नर्मदा नदी के किनारे सायंकाल हो जानेपर परशुराम अपने जनों के साथ कार्तवीर्यार्जुन के निकट ठहर गए।

निद्रां ययौ परिश्रान्तः परमानन्दसंयुतः।
राजसिंहासनस्थं स्वं ददर्श भृगुनन्दनः ॥११॥

प्रमुदित परशुराम थककर सोगए और स्वप्न में उन्होंने अपने को राजसिंहासन पर बैठे हुए देखा।

मण्डपस्थं द्विजव्रातं पूजयन्तं हरं हरिम् ।
ब्रुवन्तं जयजीवेति रामः स्वप्ने स्म पश्यति ॥१२॥

मण्डप में बैठे हुए द्विजसमुदाय को हरिहर की पूजा करते हुए देखा जोकि परशुरामको जय जीव कह रहे थे ।

स्वप्नैरतीव संहृष्टः प्रातःकृत्यं विधाय सः ।
दूतं प्रस्थापयामास कार्तवीर्यार्जुनं प्रति ॥१३॥

स्वप्नों से अति प्रसन्न परशुराम ने प्रात.कर्म से निवृत्त हो दूत को कार्तवीर्यार्जुन के पास भेजा ।

स दूतो द्रुतमागत्य संस्थितं राजसंसदि ।
वेष्टितं सचिवैः वाचमुवाच पृथिवीपतिम् ॥१४॥

वह दूत शीघ्र ही आकर राजसभा में मन्त्रियों के साथ बैठे हुए राजा से बोला—

नर्मदातट सान्निध्ये न्यग्रोधतरुमूलके ।
त्वामाह्वयति राजेन्द्र रामो युद्धार्थमुद्यतः ॥१५॥

नर्मदा-तट के निकट न्यग्रोध तरु के नीचे युद्ध के लिए सन्नद्ध परशुराम आपका आह्वान करते हैं ।

युद्धं कुरु महाराज ज्ञातिभिः सैनिकैर्युतः ।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां रामः पृथ्वीं करिष्यति ॥१६॥

हे महाराज, बान्धवों और सैनिकों को साथ लेकर आप युद्ध करें । परशुराम इक्कीस बार पृथ्वी को राजा-विहीन करेंगे ।

इत्युक्त्वा रामदूतः स रामसन्निधिमागमत् ।
राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रेयसीं समगच्छत ॥१७॥

यह कहकर परशुराम का दूत उन्हीं के पास लौट गया । राजा उसके ये वचन सुनकर रानी के पास चला गया ।

कार्तवीर्यार्जुनः प्राह हे प्रिये मन्मनोरमे।
मनोरमे पर्शुरामो मामाह्वयति संगरे ॥१८॥

कार्तवीर्यार्जुन ने कहा कि हे प्रिये, चित्त को प्रसन्न करनेवाली मनोरमे ! युद्ध के लिए परशुराम मेरा आह्वान करते हैं।

स प्राप्य शंकराच्छस्त्रं मन्त्रं च कवचं हरेः।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूप कर्तुमिच्छति भूतलम् ॥१६॥

वे भगवान् शंकर से शस्त्र, मन्त्र और विष्णु का कवच प्राप्त करके इस पृथ्वी को इक्कीस बार राज-विहीन करना चाहते हैं।

क्षुभ्यन्तीव च मे प्राणाः मनो विचलितं महत्।
शश्वत् स्फुरति वामांगं न जाने किं भविष्यति ॥२०॥

मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं, मन विचलित हो रहा है तथा बांयाँ अंग निरन्तर फड़क रहा है, न जाने क्या होनेवाला है !

तैलाभ्यङ्गितमात्मानमदर्शं गर्दभोपरि।
रहितं चन्द्रसूर्याभ्यां रक्तसन्ध्यान्वितं नभः ॥२१॥

मैंने (स्वप्न में) अपने को तैल से चुपड़ा हुआ गधे पर बैठे हुए देखा तथा है आकाश को सूर्य एवं चन्द्रमा से विहीन एवं रक्तसन्ध्या-युक्त देखा है।

अदर्शमम्बरात्सूर्यमण्डलं सम्पतद्भुवि।
धूम्रकेतुं भपातञ्च ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ॥२२॥

सूर्य को आकाश से पृथ्वी पर गिरते हुए देखा है। तारों का गिरना, धूमकेतु एवं सूर्य-चन्द्रमा का ग्रहण देखा है।

नृत्यन्ति गायकाः सर्वे गानं गायन्ति मद्गृहे।
विवाहं वल्लभे स्वस्य स्वप्नेऽपश्यमहंनिशि ॥२३॥

मेरे घर में सब नाच रहे हैं, गायक गाना गा रहे हैं। हे प्रिये, मैंने रात को स्वप्न में अपना विवाह होते हुए भी देखा।

श्रुत्वैतत् सकलं वृत्तं हृदयेन विदूयता ।
मनोरमा रुदन्त्याह राजानं भृशमाकुला ॥२४॥

दु:खित हृदय से सारे वृत्तान्त को सुनकर व्याकुल मनोरमा रोती हुई राजा से बोली—

अंशो भगवतो विष्णोः जामदग्न्यो महाबली ।
सृष्टिसंहारकर्तुश्च प्रियशिष्यः पिनाकिनः ॥२५॥

जमदग्नि-नन्दन महाबली परशुराम भगवान् विष्णु के अंशावतार हैं तथा सृष्टि करनेवाले एवं संहार करनेवाले भगवान् शंकर के प्रिय शिष्य हैं ।

त्रि:सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति ।
प्रतिज्ञा यस्य रामस्य तेन युध्यस्व न प्रभो ॥२६॥

'मैं इस पृथ्वी को इक्कीस बार राज-विहीन करूंगा' यह प्रतिज्ञा जिन परशुराम की है, उनके साथ आप युद्ध न करें ।

केवलं रावणं जित्वा शूरं त्वं मन्यसे स्वकम् ।
स्वपापेन जितो दुष्टः स त्वया न जितो रणे ॥२७॥

केवल रावण को जीतकर आप अपने को शूरवीर मान रहे हैं । वह दुष्ट तो अपने पाप द्वारा ही जीता गया है । आपने उसे युद्ध में नहीं जीता है ।

स्वप्नवद् भंगुरं विश्वं जानन्ति नृप सज्जनाः ।
कुर्वन्ति सततं धर्मं ध्यायन्ति परमेश्वरम् ॥२८॥

हे राजन्, सज्जन इस विश्व को स्वप्न के समान नाशवान् मानते हैं, अतएव वे निरन्तर सदा धर्माचरण करते हैं एवं परमेश्वर का ध्यान करते हैं ।

दत्तेन दत्तं यज्ज्ञानं सर्वं तत् विस्मृतं त्वया ।
अन्यथा मुनिहिंसायामासीत्तव मनः कथम् ॥२९॥

दत्तात्रेय ने जो ज्ञान आपको दिया था प्रतीत होता है कि वह सब आपने भुला दिया अन्यथा मुनि का वध करने में आपका मन कैसे प्रवृत्त होता।

सेवस्व ब्राह्मणान् राजन् देवेभ्योऽपि महत्तमान्।
ब्राह्मणे परितुष्टे हि तुष्टो भवति मापतिः ॥३०॥

हे राजेन्द्र आप देवताओं से भी अधिक श्रेष्ठ ब्राह्मणों का आराधन करो उनके सन्तुष्ट होजाने पर विष्णु भी सन्तुष्ट होजाते हैं।

पतिव्रतानां राजेन्द्र शतपुत्राधिकः पतिः।
इत्थमाभाष्य भर्त्तारं क्रोडेऽनैषीन्मनोरमा ॥३१॥

हे राजेन्द्र पतिव्रता स्त्रियों के लिए पति सौ पुत्रों से भी अधिक होता है। यह कहकर मनोरमा ने अपने पति को गोदी में खींच लिया।

कार्तवीर्यार्जुनः प्राह श्रुतं देवि त्वयोदितम्।
शोकार्तानां हि वाक्यानि न प्रशंसन्ति साधवः ॥३२॥

कार्तवीर्यार्जुन ने कहा कि हे देवि जो कुछ तुमने कहा वह मैंने सुन लिया। साधुजन शोकाकुल व्यक्तियों के वाक्यों की प्रशंसा नहीं करते हैं।

सुखं दुःखं भयं शोकः कलहः प्रीतिरेव च।
कर्मभोगार्हं कालेन सर्वं भवति हे प्रिये ॥३३॥

हे सुन्दरी सुख दुःख भय शोक कलह एवं प्रीति ये सब कर्म भोगने योग्य काल को पाकर अपने आप होते हैं अर्थात् किसी के करने से नहीं समय पर स्वतः होजाते हैं।

विष्णोर्भगवतो ह्यंशः पर्शुरामो न संशयः।
निष्फलास्य प्रतिज्ञापि न भविष्यति कर्हिचित् ॥३४॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि परशुराम भगवान्‌विष्णु के अंशावतार हैं तथा इनकी प्रतिज्ञा भी कभी विफल नहीं होगी।

इत्युक्त्वा स महाराजः समराय समुद्यतः ।
वाद्यं च वादयामास कारयामास मंगलम् ।।३५।।

यह कहकर युद्ध के लिए उद्यत कार्तवीर्य ने बाजे बजवाए और मंगलाचरण करवाया ।

मनोरमाखिलं श्रुत्वा स्वपत्युर्निश्चितं मतम् ।
भविष्यं मनसा ज्ञात्वा प्राणांस्तत्याज सत्वरम् ।।३६।।

अपने पति के निश्चित मत को सुनकर एवं भविष्य की कल्पना करके मनोरमा ने तुरन्त ही प्राणों को त्याग दिया ।

मनोरमां मृतां दृष्ट्वा रुरोद स महातुरः ।
मनोरमे त्वमुत्तिष्ठ न यास्यामि रणांगणे ।।३७।।

मनोरमा को मरा हुआ देखकर वह वहुत आतुर होकर रोया । हे मनोरमे ! तुम उठो मैं युद्ध करने नहीं जाऊँगा ।

नृपस्य रोदनं श्रुत्वा वाणीस्माहाशरीरिणी ।
कमलांशा नृप त्वेषा जगाम कमलालयम् ।।३८।।

राजा के विलाप को सुनकर आकाशवाणी हुई कि हे राजन् ! यह तो लक्ष्मी का अंश थी उन्हीं के पास चली गई ।

त्वं विष्ण्वंशो रणं कृत्वा बैकुण्ठं गच्छ भोप्रभो ।
इत्येतद् वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं स भूपतिः ।।३९।।

हे प्रभो आप विष्णु के अंश हैं युद्ध करके बैकुण्ठ जाइये । यह सुनकर राजा ने शोक त्याग दिया ।

नानाविधानि द्रव्याणि वस्त्राणि स नराधिपः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ स्वस्याः पत्न्याः श्रेयः कृते ततः ।।४०।।

तब कार्तवीर्य ने अपनी पत्नी के कल्याण के लिए नानाप्रकार की वस्तुएँ एवं वस्त्र ब्राह्मणों को प्रदान किए ।

गरिष्ठः स्वगुणैःषष्ठः समाप्तिं सर्ग आगमत् ।
त्रयोदश प्रबन्धानां भ्रातुः काव्यस्य चैतस्य ॥४१॥

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस काव्य में स्वगुणों से गरिष्ठ यह षष्ठ सर्ग भी समाप्त हुआ ।

इति परशुरामदिग्विजये षष्ठ सर्गः ।

अथ सप्तमः सर्गः

नृणां स नृपतिः कोटिं नृपेन्द्राणां च लक्षकम् ।
असंख्यकं गजाश्वानां पदातीनां तथैव च ॥१॥
शतमक्षौहिणीनां च महाबलपराक्रमम् ।
असंख्यं रथिकानां च गृहीत्वा रणमाययौ ॥२॥

वह राजा एक करोड़ व्यक्ति, एक लाख राजा, असंख्य हाथी घोड़े और पदाति तथा सौ अक्षौहिणी प्रबल सेना एवं असंख्य रथारोहियों को लेकर युद्धस्थल में आया ।

मृतवृत्तं कुवृत्तं च ब्रह्मशापं च दुर्ग्रहम् ।
दुर्गन्धं दुष्टशब्दं च नृपः शुश्राव वर्त्मनि ॥३॥

राजा ने रास्ते में मृत व्यक्तियों का समाचार कुत्सित वृतान्त, ब्रह्म शाप एवं दुष्ट शब्दों को सुना और दुर्गन्ध का अनुभव किया ।

चित्तं विक्षुभितं प्राणाः नो रणाय समुत्सुकाः ।
वामांगस्पन्दनं राज्ञो जडतांऽगेऽभवन्मुहुः ॥४॥

उनका चित्त विक्षुब्ध था मन युद्ध के लिये उत्सुक नहीं था उसका बायां अंग बराबर फड़क रहा था एवं अंगों में शिथिलता थी ।

एवं सत्यपि राजा स प्रविवेश रणांगणे ।
रणं कर्तुं स्वसेनाभिः निःशंकः श्रींहरिं स्मरन् ॥५॥

इस पर भी वह राजा निःशंक होकर सेना सहित युद्ध करने के लिये भगवान् का स्मरण करता हुआ युद्धस्थल में प्रविष्ट हुआ ।

अवरुह्य रथात्तूर्णं दृष्ट्वा रामं पुरः स्थितम् ।
ननाम दण्डवद् भूमौ मनसा वचसा नृपः ॥६॥

परशुराम को सामने देखकर राजा ने शीघ्र ही रथ से उतर कर मन वचन से भूमि में दण्डवत प्रणाम किया ।

आशिषं प्रददौ रामः स्वर्गमाप्नुहि भूपते ।
बभूव तस्य सा सह्या दुर्लंघ्या वेधसः स्पृहा ॥७॥

परशुराम ने आशीर्वाद दिया कि हे राजन् तुम स्वर्ग प्राप्त करो । उसको वह सहन भी हो गया । ईश्वर की इच्छा दुर्लंध्या है ?

रामः प्रोवाच पृथ्वीशं राज्ञां तेषां हि सम्मुखे ।
अये राजेन्द्र धर्मिष्ठ चन्द्रवंश शिरोमणे ॥८॥

उन राजाओं के समक्ष परशुराम ने राजा से कहा कि राजेन्द्र, धर्मिष्ठ चन्द्रवंश शिरोमणि ।

विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः ।
स्वयं विद्वांश्चमे ब्रूहि कथं विप्रेण संयुगः ॥९॥

तुम विष्णु के अंश विद्वान् दत्तात्रेय के शिष्य हो स्वयं भी विद्वान् हो फिर मुझे बताओ कि ब्राह्मण के साथ तुम्हारा युद्ध कैसा ?

क्व गता कपिला साद्य क्व त्वं क्व स मुनीश्वरः ।
यत्कृतं त्वयका राजन्न तद्योग्यं कदाचन ॥१०॥

वह कपिला आज कहां चली गई कहाँ तू और कहाँ वह मुनीश्वर ! अधम जो कुछ तूने किया है वह कदापि तेरे योग्य नहीं है ।

त्वामुपोषन्तमीशंहि पृथिव्या धार्मिकं तथा ।
मत्पिता कारयामास पारणं ते फलं त्विदम् ॥११॥

तुझ व्रती, पृथ्वी के धार्मिक राजा को मेरे पिता ने पारणा कराई वह उसका फल है ।

पठितं विधिना दत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने ।
विश्वं विश्वं यशोभिस्तेपूर्णमद्यायशः कथम् ॥१२॥

तूने अध्ययन किया है प्रतिदिन ब्राह्मणों को विधिपूर्वक दान दिया है सारा विश्व तेरे यश से परिपूर्ण है फिर आज यह अपयश कैसा ?

गावश्च ब्राह्मणाश्चैव जगद्रक्षणहेतवः ।
मन्त्र द्वारा सुधीविप्राः हविर्द्वाराच धेनवः ॥१३॥

गो और ब्राह्मण संसार की रक्षा के कारण हैं ब्राह्मणों में मन्त्र प्रतिष्ठित हैं और हवि गाय में ।

नृप गोभिश्च विप्रैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धै दानवीरैश्च पंचभिःधार्यंते मही ॥१४॥

हे नृप ! गो, ब्राह्मण, सती स्त्री, सत्यवादी पुरुष यश आदि इच्छा रहित दानवीर इन पाँचों से पृथ्वी टिकी हुई है ।

यज्ञ साधन भूता या जगन्माता प्रकीर्तिता ।
सा त्वयापकृता धेनुः त्वतो दुष्टः परश्च कः ॥१५॥

तूने यश की साधन भूत, जगत् की माता गाय का तिरस्कार किया है तुझसे अधिक दुष्ट और कौन होगा ।

तपस्वी वाऽतपस्वी वा ब्राह्मणो भूमिदैवतम् ।
स त्वया निहतो दुष्ट धरणी ते घृणीयते ॥१६॥

तपस्वो हो अथवा अतपस्वी ब्राह्मण पृथ्वी के देवता हैं । दुष्ट तूने उसी का वध किया है । अतः भूमि भी तुमसे घृणा करती है ।

इत्युक्त्वा पर्शुरामस्तु विरराम रणोत्सुकः ।
श्रुत्वा तत् कार्तवीर्यो हि प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१७॥

यह कहकर रण के लिये उद्यत परशुराम चुप हो गये और यह सुन कर कार्तवीर्य बोला ।

अये राम हरेरंश, महाबलपराक्रम ।
श्रुतो धर्मो मया येभ्यः त्वं च तेषां महान्गुरुः ॥१८॥

हे विष्णु के अंश, महाबली परशुराम मैंने जिनसे धर्मोपदेश सुना है आप तो उनके भी गुरु हैं ।

ब्राह्मणानां तपो धर्म ऐश्वर्यं बाहुजन्मनाम् ।
वाणिज्यं चैव वैश्यानां शूद्राणां सर्वसेवनम् ॥१६॥

ब्राह्मणों का धर्म तप, क्षत्रियों का धर्म ऐश्वर्य, वैश्यों का व्यापार तथा शूद्रों का धर्म सबकी सेवा करना है ।

क्षत्रियाणां तपस्यायां स्पृहात्यन्तविनिन्दिता ।
भोगेषु ब्राह्मणानां च स्पृहा शास्त्रेषु निन्द्यते ॥२०॥

क्षत्रियों की तपस्या में स्पृहा अत्यन्त निन्दित है और ब्राह्मणों की भोगों में स्पृहा की शास्त्रों में निन्दा की गई है ।

राजा राजसिकं कर्म करोन्येव निसर्गतः ।
रागतो मयकाधेनु र्याचिता किं हि दूषणम् ॥२१॥

राजा तो स्वभाव से ही राजकीय कर्म करता है यदि मैंने रागवश कामधेनु की याचना की तो इसमें क्या दोष है ।

कस्यान्यस्य मुनेर्धेनुः दृश्यते कामधुक् त्वया ।
स्पृहा रणे वा भोगे वा युस्मास्वेव व्यतिक्रमः ॥२२॥

और किस मुनि के पास कामधेनु तुम्हें दिखाई देती हैं । युद्ध अथवा भोग में स्पृहा के विषय में व्यतिक्रम आप में ही है ।

त्रिंशदक्षौहिणीं सेनां निहत्याजौ पराक्रमात् ।
मां च हन्तुं समायान्तं क्षत्रियोऽहं कथं सहे ॥२३॥

मैं क्षत्रिय हूँ । तीस अक्षौहिणी सेना को युद्ध में अपने पराक्रम से मारकर जो अब मुझे मारने आया है मैं उसे कैसे सहन कर सकता हूँ ।

पित्रा ते निहता भूपाः महाबलपराक्रमाः ।
क्षत्राणां युद्धधर्माणां कथं सह्यमिदं प्रभो ।।२४।।

तुम्हारे पिता ने अनेक महाबली राजाओं को मारा है। युद्ध ही जिनका धर्म है उन क्षत्रियों को यह कैसे सहन हो सकता है।

त्रिःसप्त कृत्वो निर्भूपामिमां कर्तुं महीमिति ।
त्वयाकृता प्रतिज्ञा या तां पालय भृगूद्वह ।।२५।।

इक्कीस बार मैं इस पृथ्वी को राजाविहीन करूँगा तुम्हारी जो यह प्रतिज्ञा है उसका पालन करो।

क्षत्रियाणां रणोधर्मो रणे मृत्युर्न गर्हितः ।
रणे स्पृहा च विप्राणां श्रूयते न च दृश्यते ।।२६।।

युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म है युद्ध में मरना निन्दित नहीं है किन्तु ब्राह्मणों का युद्ध प्रिय होना न सुना ही जाता है न देखा ही जाता है।

क्षत्रियाणां बलं युद्धं व्यापारश्च बलं विशाम् ।
सर्वसेवा च शूद्राणां ब्राह्मणानां तपोबलम् ।।२७।।

युद्ध क्षत्रियों का व्यापार, वैश्यों का सबकी सेवा, शूद्रों का और तप ब्राह्मणों का बल है।

सतां सत्यं बलं मिथ्याभाषणं चासतां बलम् ।
बलं न्यायोहि भूपानां बालानां रोदनं वलम् ।।३२।।

सत्य सज्जनों का, मिथ्या भाषण दुष्टों का, प्रताप राजाओं का तथा रुदन स्त्रियों का बल है।

बलं विद्यावतां विद्या धनिनां च धनं वलम् ।
वलं विवेकः शान्तानां गुणिनां च गुणो वलम् ।।३३।।

विद्वानों का बल विद्या है, धनियों का बल धन है, शान्त व्यक्तियों का बल विवेक है तथा गुणवानों का बल गुण है।

पतिर्वलंहि सुस्त्रीणां शिष्याणां च गुरुर्बलम् ।
वरशापौ सुराणां चासुराणां हिंसनं वलम् ।।३४।।

पतिव्रता स्त्रियों का बल पति है, शिष्यों का बल गुरु है, वर और शाप दे सकना देवताओं का बल है और हिंसा राक्षसों का वल है ।

धर्मों बलं गृहस्थानां भृत्यानां सेवनं वलम् ।
राजा बलं प्रजानां हि निर्वलानां हरिर्वलम् ।।३५।।

धर्म गृहस्थियों का राजसेवा भृत्यों का राजा प्रजा और निर्बलों का भगवत् बल है ।

बाहुजानां बलंबाहुः ब्राह्मणानां वचो वलम् ।
ब्राह्मणो हि रणोद्योगी नव दृष्टो न च श्रुतः ।।३७।।

राजाओं का बल वाहु है, ब्राह्मणों का बल वचन है । ब्राह्मण होकर युद्ध का उद्योग करने वाला ब्राह्मण न सुना ही गया हैं और न देखा ही गया है ।

इत्युक्त्वा कार्तवीर्यो हि निवार्योक्ति रणे स्थितः ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वे मौनमवाप्नुवन् ।।३८।।

इस प्रकार कहकर कार्तवीर्य चुप होकर युद्धभूमि में खड़ा हो गया । उसके इन वचनों को सुनकर सभी चुप हो गए ।

रामोऽब्रवीत् शृणु क्ष्माप शास्त्रवाक्यवलावलम् ।
तद्द्वारा निर्णयोकारि मनुना धर्मवेदिना ।।३९।।
गोर्ब्राह्मणस्य हन्तारं मातरं पितरं तथा ।
योहन्ति तं नयोहन्ति महादुष्टः सकीर्तितः ।।४०।।

राम बोले हे कार्तवीर्य ! शास्त्र वाक्यों का बलावल मनु ने लिखा है—जो पुरुष गौ ब्राह्मण माता पिता के मारने वाले को नहीं मारता है वह दुष्ट से भी दुष्ट है ।

रामस्य भ्रातरः सर्वे शस्त्रास्त्रालंकृतारणे ।
आरेभिरे रणं कर्तुं पर्शुरामेंगितेन ते ॥४१॥

शस्त्रास्त्र से अलंकृत परशुराम के सारे भाइयों ने उनके संकेत से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया ।

रणोन्मुखांश्च तान्दृष्ट्वा मत्स्यराजो महाबलः ।
कार्तवीर्याज्ञया घोरं रणं कर्तुं समुद्यतः ॥४२॥

उन सबको युद्ध के लिए तैयार देखकर महाबली मत्स्यराज ने कार्तवीर्य की आज्ञा से घोर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया ।

राजा चिक्षेप दिव्यास्त्रं जमदग्निसुतान्प्रति ।
दिव्यास्त्रैरेव ते तस्य चिच्छिदुः सशरं धनुः ॥४३॥

उस राजा ने जमदग्नि पुत्रों के प्रति दिव्यास्त्र फेंका । उन्होंने दिव्यास्त्रों के प्रयोग से ही उसके बाण सहित धनुष को काट दिया ।

शस्त्र हीनं नृपं दृष्ट्वा मुनयो हर्षमाप्नुवन् ।
दधुस्ते शूलिनः शूलं मत्स्यराजवधेच्छया ॥४४॥

राजा को शस्त्रहीन देखकर मुनियों को बहुत हर्ष हुआ और भक्तराज के वध की इच्छा से शंकर के शूल को धारण किया ।

शूलनिक्षेप काले तु गीराह ह्यशरीरिणी ।
शूलं त्यजत हे विप्राः शृणुध्वं मम भाषितम् ॥४५॥

शूल को फेंकने के समय आकाशवाणी हुई कि हे विप्रो मेरे कथन को सुनो ।

शिवस्य कवचं दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा ।
मत्स्यराज गले बद्धं सर्वावयवरक्षणम् ॥४६॥

पहले किसी समय में दुर्वासा ऋषि द्वारा अदत्त शिवजी का दिव्य कवच मत्स्यराज ने बांध रखा है जोकि सब अवयवों की रचना करने वाला है ।

श्रुत्वाऽकाशस्य तां वाणीं रामः सन्यासवेशकृत् ।
ययाचे कवचं भूपात् भूपः तस्मै ददौच तत् ॥४७॥

यह आकाशवाणी सुनकर सन्यासी का वेश धारण करके शृङ्गी ने राजा से कवच मांग लिया और राजा ने वह उसे दे दिया ।

गृहीते कवचे ते तं शूलेनैव निजघ्निरे ।
जमदग्निसुताः राजा पपात भुविमूर्च्छितः ॥४८॥

कवच लेकर जमदग्नि पुत्रों ने शूल से ही प्रहार किया और राजा मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ।

मत्स्यराजे मृते राजा प्रैरिरन्नृपतीनिमान् ।
वृहद्बलं सोमदत्तं विदर्भमिथिलेश्वरम् ॥४९॥

मत्स्यराज के मर जाने पर कार्तवीर्य ने विदर्भ और मिथिला के राजा वृहद्बल और सोमदत्त को भेजा ।

निषधाधिपतिं चैव मगधाधिपतिं तथा ।
तेचाययू रणे सर्वे कर्तुं रामेण संगरम ॥५०॥

निषधाधिपति और मगधाधिपति को भी भेजा । वे सब परशुराम के साथ युद्ध करने के लिए युद्धभूमि में गए ।

रामस्य भ्रातरः सर्वे जातानिः शस्त्र पाणयः ।
वीरभूपैः पराभूताः दिव्य शस्त्रास्त्रधारिभिः ॥५१॥

परशुराम के सारे भाई निहत्थे हो गए और भयंकर शस्त्रास्त्रधारी राजाओं से हार गए ।

आजगाम रणे रामः सत्वोर्जितपराक्रमः ।
पिनाकहस्तः संत्रस्तः दृष्ट्वाभ्रातृन् पलायितान् ॥५२॥

भाइयों को पराजित देखकर शोक से पूर्ण एवं दुःखित परशुराम पिनाक को हाथ में लिए हुए युद्ध भूमि में आए ।

गतोऽयं सप्तमः सर्गो निसर्गोदात्तगीर्युतः ।
त्रयोदश प्रवन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥५३॥

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस पवित्र काव्य में स्वभाव से उदात्त वाणी-युक्त सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

इति परशुरामदिग्विजये सप्तमः सर्गः ॥

अथाष्टमः सर्गः

चिक्षेप नागपाशं स पर्शुरामो महाबलः।
सोमदत्तो महावीर्यः गारुडेन तमच्छिनत् ॥१॥

महाबली परशुराम ने नागपाश फेंका तब बलवान् सोमदत्त ने गरुणास्त्र के प्रयोग से उसे खंडित कर दिया।

रामः शंकरदत्तेन शूलेन निजघान तम्।
बृहद्बलं च गदया वैदर्भं चाथमुष्टिभिः ॥२॥

परशुराम ने शंकर द्वारा प्रदत्त शूल से उसपर प्रहार किया तथा बृहद्बल पर गदा से एवं विदर्भ नरेश पर मुष्टियों से प्रहार किया।

मैथिलं मुद्गर द्वारा शक्तिद्वारा च नैषधम्।
मागधं चरणद्वारा शरद्वारा च सैनिकान् ॥३॥

मिथिला नरेश पर मुग्दर से निषाधराज पर शक्ति से मगधराज पर चरण से और सैनिकों पर शस्त्र से प्रहार किया।

निहत्व निखिलान् भूपान् प्रलयाग्निसमो रणे।
निहन्तुं कार्तवीर्यं स महावीर्यं स्म धावति ॥४॥

युद्ध में समस्त राजाओं को मारकर वे प्रलयाग्नि के सदृश महाबली कार्तवीर्य को मारने के लिए दौड़े।

दृष्ट्वा परशुरामं तं कार्तवीर्यवधोद्यतम्।
आययुः शतशो भूपाः हन्तुं रामं समन्ततः ॥५॥
कान्य कुब्जाश्च बहवः सौराष्ट्रा बहवस्तथा।
राढीयाश्च शतं भूपाः वारेन्द्राश्च शतं तथा ॥६॥

कार्तवीर्य को मारने के लिए परशुराम को उद्यत देखकर परशुराम को मारने के लिए चारों ओर से सैंकड़ों राजा, अनेक कान्यकुब्जीय तथा सौराष्ट्रीय तथा सौ राढीय एवं सौ वारेन्द्र राजा दौड़े।

त्रिरात्रं युयुधे रामः तैः सर्वैः सह भूमिपैः।
द्वादशाक्षौहिणीः सेनाः तेषां चिच्छेद पर्शुना ॥७॥

उन समस्त राजाओं के साथ परशुराम का तीन दिन तक युद्ध हुआ और उन्होंने परशु से उनकी बारह अक्षौहिणी सेना काट डाली।

रम्भास्तम्भायमानं हि नृपयूथं त्रिशूलतः।
खड्गेन सकलाः सेना जघानाशु भृगूद्वहः ॥८॥

परशुराम ने त्रिशूल से समस्त नृपसमुदाय को केले के खम्भे के समान तथा खड्ग से सारी सेना को नष्ट कर दिया।

सर्वान् भूपान् हतान् दृष्ट्वा सुचन्द्रो नाम भूपतिः।
तत्राजगाम वेगेन पर्शुरामवधेच्छया ॥९॥

सारे राजाओं को मरा हुआ देखकर सुचन्द्र नामक राजा परशुराम को मारने की इच्छा से वहाँ वेग से आया।

द्वादशाक्षौहिणीसेना संयुतः स रुषान्वितः।
युयुधे पर्शुरामेण यद्वत् सिंहेन सिंहकः ॥१०॥

बारह अक्षौहिणी सेना लेकर वह क्रुद्ध होकर परशुराम से इस प्रकार लड़ा मानों एक सिंह दूसरे सिंह से लड़ रहा है।

रामः शंकर शूलेन सुचन्द्रं समताड़यत्।
समस्ताः तस्य ताः सेनाःपर्शुना समखण्डयत् ॥११॥

परशुराम ने शंकर द्वारा प्रदत्त शूल से राजा पर प्रहार किया और उसकी सारी सेना को फरसे से काट दिया।

दृष्ट्वैतत् दारुणं कर्मं सुचन्द्रो नाम भूपतिः ।
रामेण प्रहितं शस्त्रं चिच्छेद च ननाद च ॥१२॥

यह घोर कर्म करने के वाद उन्होंने सुचन्द्र से युद्ध किया । राजा ने उनके द्वारा चलाए गए शस्त्र को काट दिया और सिंहनाद किया ।

रामो नारायणास्त्रं च प्रायुङ्क्त नृपतिं प्रति ।
तल्लक्ष्यं कुशलं त्यक्त्वा ययौ नारायणान्तिके ॥१३॥

परशुराम ने राजा के प्रति नारायणास्त्र का प्रयोग किया किन्तु वह लक्ष्य को सकुशल छोड़कर भगवान् विष्णु के पास चला गया ।

पुरतश्चकितोऽपश्यत् भद्रकालीमुपस्थिताम् ।
शस्त्रंविहाष तां रामः तुष्टाव नतमस्तकः ॥१४॥

चकित होकर परशुराम ने सामने भगवती को देखा और शस्त्र छोड़कर नतमस्तक होकर स्तुति करने लगे ।

नमः शंकर योषायै शिवाय सर्वकर्मसु ।
नमः सर्वजगत्कर्त्र्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः ॥१५॥

शंकर की कान्ता, सब कार्यों में कल्याण करनेवाली जगत्कर्त्री एवं जगत् की रक्षा करनेवाली को नमस्कार है ।

नमस्ते शरण्ये त्रिलोकी वरेण्ये महाधन्यधन्ये महेशादिमान्ये ।
नमस्ते करालेमहामुण्डमाले कृपालेशतः पातु मां भीतिकाले ।१६।

शरणागत की रक्षा करनेवाली त्रिलोकी में श्रेष्ठ धन्यवादार्ह, महेशादिकों को मान्य, मुण्डों की माला को धारण करने वाली इस भय के समय में अपनी कृपा से मेरी रक्षा करो ।

प्रसीद जगतां मातः कातस्तेपरमास्तुतिः ।
त्वत्पादशरणं यामि प्रतिज्ञां मम पात्रय ॥१७॥

हे जगतमाता इससे अधिक आपकी क्या स्तुति हो सकती है मैं आपकी शरण में आया हूँ मेरी प्रतिज्ञा पूरी करो ।

त्वयाच शिवलोके हि मह्यं दत्तो वरः पुरा ।
तं वरं सफलं कर्तुं त्वमर्हसि महेश्वरि ।।१८।।

आपने शिवलोक में मुझको वर दिया था हे महेश्वरि ! आप उस वर को सफल करें ।

पर्शुरामस्तुतिं श्रुत्वा प्रसन्ना जगदम्बिका ।
मा भैं रामेतितं प्रोच्य झटित्यन्तरधीयत ।।१९।।

परशुराम की स्तुति सुनकर प्रसन्न भगवती 'डरो मत' कहकर तुरन्त ही अन्तर्धान हो गईं ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्माऽगत्य राममवोचत ।
शृणु भार्गव मे वाक्यं सुचन्द्रजयहेतवे ।।२०।।

इसी बीच ब्रह्मा जी आकर परशुराम से बोले कि हे भार्गव सुचन्द्र को जीतने के लिए तुम मेरी बात सुनो ।

दशाक्षरीं महाविद्यां सुचन्द्राय नृपाय प्राक् ।
दुर्वासाः प्रददौ प्रीतः कवचं चाति दुर्लभम् ।।२१।।

पहले किसी समय में दुर्वासाऋषि ने प्रसन्न होकर मुचन्द्र को दशाक्षरी नामक महाविद्या तथा अति दुर्लभ एक कवच प्रदान किया था ।

राम गच्छतु तत्पार्श्वे कृत्वा संन्यासवेषकम् ।
कवचं तिष्ठतु प्राणानपि तुभ्यं स दास्यति ।।२२।।

हे परशुराम तुम उसके पास संन्यासी के रूप में जाओ कवच की तो बात ही क्या वह अपने प्राण भी तुमको दे देगा ।

रामः संन्यास वेषेण गत्वा नृपमयाचत ।
मन्त्रं च कवचं चापि देहि मेऽतिथपे तव ।।२३।।

अद्भुत पराक्रमी परशुराम को योग से अपने पास आया जानकर उसने सोचा कि ब्राह्मण के लिए क्या अदेय है ।

आगतं सोन्तिके ज्ञात्वा योगेनाऽद्भुतविक्रमम् ।
पर्शुरामं द्विजस्यार्थे किमदेयमचिन्तयत् ॥२४॥

परशुराम ने संन्यासी का वेष धारण कर राजा से याचना की कि मुझ अतिथि को मन्त्र और कवच प्रदान करो ।

राजा स्वकवचं प्रादाददेयं चापि याचितः ।
रामस्तदैव शूलेन नं जघान नृपोत्तमम् ॥२५॥

याचना किए जाने पर राजा ने अपना कवच और मन्त्र भी प्रदान कर दिया । परशुराम ने तुरन्त ही राजा को मार दिया ।

सुचन्द्रे पतिते राज्ञि सेनात्र्यक्षौहिणीयुतः ।
तत्सुतः पुष्कराक्षोऽपि युद्धाय समुपागतः ॥२६॥

सुचन्द्र के मारे जाने पर उसका पुत्र पुष्कराक्ष तीन अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध करने के लिए आ गया ।

तं दृष्ट्वा भ्रातरोः वीराः पर्शुरामस्य धीमतः ।
आगत्य समरे सेनासहितं तं न्यपातयन् ॥२७॥

उसे देखकर परशुराम के सारे भाई तत्क्षण ही वहां आगए और युद्ध करके सेनासहित उसको मार दिया ।

एवं राजा सहस्राक्षः सपुत्रो हि महारथः ।
कृत्वा रामेण संग्रामं सप्ताहं स्वर्गतिं गतः ॥२८॥

इसी प्रकार पुत्र सहित महारथी सहस्राक्ष परशुराम के साथ सात दिन तक युद्ध करके स्वर्गगामी हुआ ।

पतिते तु सहस्राक्षे सपुत्रे सहसैनिके ।
आजगाम स्त्रयं योद्धुं कार्तवीर्योऽतिवीर्यवान् ॥२९॥

पुत्र और सैनिकों सहित सहस्राक्ष के मारे जाने पर कार्तवीर्य स्वयं युद्ध करने के लिए आया ।

सुवर्णरथमारुह्य नानारत्नसमन्वितम् ।
नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ स समरांगणे ॥३०॥

तरह तरह के शस्त्रों को लेकर नाना रत्नों से युक्त सुवर्णरथ पर चढकर वह युद्ध भूमि में स्थित हुआ ।

शतराजेन्द्रसंयुक्तं युक्तं कोटिमहारथैः ।
कार्तवीर्यं महावीर्यं दृष्ट्वा रामो ननादवै ॥३१॥

सौ राजाओं और करोड़ महारथियों से युक्त कार्तवीर्य को आया देखकर परशुराम बहुत प्रसन्न हुए ।

कार्तवीर्योऽपि तं राममभिरामं निजगुंणैः ।
दृष्ट्वावतीर्य रथतः प्रणम्य रथमारुहत् ॥३२॥

अपने गुणों से अभिराम परशुराम को रथ से उतर कर प्रणाम करके कार्तवीर्य भी अपने रथ पर सवार हो गया ।

उभयोः सेनयोर्युद्धं बभूव तुमुलं महत् ।
रामस्य भ्रातरो याताः शिष्याश्चाथपलायिताः ॥३३॥

पहले दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ तथा परशुराम के भाई और शिष्य भाग गए ।

नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतांवरः ।
स्व सैन्यं राजसैन्यं च नापश्यत् छादितं क्वचित् ॥३४॥

शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम को राजा के बाणों से आच्छादित अपनी और राजा की सेना कहीं नहीं दिखाई दी ।

रामः चिक्षेप नागास्त्रं दुर्निवार्यं भयंकरम् ।
लीलया वारयामास नृपतिर्गारुड़ेन तत् ॥३५॥

परशुराम ने दुर्निवार्य भयंकर नागास्त्र का प्रयोग किया । राजा ने गारुडास्त्र से उसका निवारण कर दिया ।

ब्रह्मास्त्रं नृपनाशार्थं रामः चिक्षेप भीषणम् ।
ब्रह्मास्त्रेणैव भूपस्य प्राप निर्वापणं हि तत् ॥३६॥

परशुराम ने राजा को नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। राजा के ब्रह्मास्त्र से ही वह शान्त हो गया।

दत्तदत्तं च यच्छूलमव्यर्थं मन्त्रपूर्वकम् ।
जग्राह समरे राजा पर्शुरामवधेच्छया ॥३७॥

युद्ध में परशुराम का वध करने की इच्छा से दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त अमोघ शूल को राजा ने मन्त्रपूर्वक हाथ में लिया।

पपात तच्च शूलं हि पर्शुरामस्य वक्षसि ।
मूर्च्छामवाप तेनायं जमदग्निसुतो बली ॥३८॥

वह शूल परशुराम के सीने पर गिरा जिससे बलवान् जमदग्नि पुत्र मूर्च्छित हो गए।

मूर्च्छिते पर्शुरामे तु हाहाकारो महाभूतन् ।
आजग्मुः समपेतस्मिन् ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३९॥

परशुराम के मूर्च्छित हो जाने पर सर्वत्र हाहाकार मच गया और ब्रह्मा विष्णु महेश युद्ध भूमि में आये।

तदैव शंकरः श्रीमान् भक्तानामभयंकरः ।
रामं संजीवयामास विष्णुदेवनिदेशतः ॥४०॥

उसी समय भक्तों को अभयदान करनेवाले भगवान् शंकर ने विष्णु की आज्ञा से परशुराम को जीवित कर दिया।

रामस्तु चेतनां प्राप्य लज्जावनतमस्तकः ।
प्रणनाम सुरान् सर्वान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥४१॥

चेतना प्राप्त करने पर लज्जा से सिर झुकाए परशुराम ने ब्रह्मा विष्णु महेश सभी देवताओं को प्रणाम किया।

एतस्मिन्नन्तरे देवा यथाऽऽयाताः तथा गताः ।
पशु रामस्तु राजानमाहवार्थं समाह्वयत् ।।४२।।

इस बीच देवता जैसे आए थे उसी तरह चले गए। परशुराम ने राजा का युद्ध के लिए आह्वान किया ।

तिष्ठ तिष्ठ धराधीश, युद्धार्थमहमागतः ।
कालेनंव हि जायेते युद्धे जयपराजयौ ।।४३।।

हे राजन् ठहरो ठहरो मैं युद्ध के लिए आगया हूँ। युद्ध में जय पराजय तो समय के प्रभाव से होते ही रहते हैं।

जिताः सर्वेऽपि राजानो लीलया संगरे त्वया ।
जितोऽहं दत्तशूलेन कीर्तिस्तेह्यजराममृरा ।।४४।।

तुमने सारे राजाओं को युद्ध में सरलता से जीता, मुझे भी दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त शूल से जीत लिया निश्चय ही तुम यश के पात्र हो ।

रामस्य वचन श्रुत्वा राजा परमधर्मवित् ।
मूर्ध्नाप्रणम्य तं भक्त्यापशु राममवोचत ।।४५।।

परशुराम के वचनों को सुनकर धर्मज्ञ राजा ने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हुए कहा ।

सदाचारो दुराचारः प्रतिष्ठा परमं तपः ।
सर्वं भवति कालेन कालो हि दुरतिक्रमः ।।४६।।

सदाचार, दुराचार, प्रतिष्ठा, तप समय के प्रभाव से ही होते हैं काल का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता है ।

काले सिंहः शृगालं च हन्तिसोऽपि हरिंतथा ।
काले व्याघ्रां मृगं हन्ति व्याघ्रोहन्तिस्टगातथा ।।४७।।

समय आने पर सिंह गीदड़ को और गीदड़ सिंह को मार देता है था व्याघ्र मृग को और मृग सिंह को मार देता है ।

मरिष्यन्ति सुराः सर्वे स्थावराजंगमास्तथा ।
विष्णुः काले लयंयाति कालो हि दुरतिक्रमः ॥४८॥

सारे देवता, सारे स्थावर जंगम पदार्थ नाश को प्राप्त होंगे । समय आने पर सभी लय को प्राप्त होते हैं काल का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता है ।

दत्तदत्तमिदं ज्ञानंसत्यमेव न संशयः ।
इत्युक्त्वा कार्तवीर्यः स रुरोह रथमात्मनः ॥४९॥

दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त यह ज्ञान निस्सन्देह सत्य है । यह कहकर कार्तवीर्य अपने रथ पर सवार हो गया ।

सैन्यं तस्य ततो रामः पर्शुना समघातपत् ।
नृपं पाशुपतास्त्रेणतमव्यर्थेन सत्वरम् ॥५०॥

तब परशुराम ने राजा की सेना को परशु से मार दिया और शिव का स्मरण करते हुए राजा को अमोघ पाशुपतास्त्र से मार दिया ।

पशुपतिप्रदत्तन पशु नाऽमोघशक्तिना ।
सहस्रबाहून् चिच्छेद सहस्रार्जुनकस्य सः ॥५१॥

शंकर द्वारा प्रदत्त अमोघ शक्ति वाले परशु से उन्होने सहस्रार्जुन की सहस्र भुजाएँ काट डालीं ।

हते तस्मिन् महावीर्ये कार्तवीर्ये नराधिपे ।
ववुः शनैः शनैर्वाताः प्रसन्नमभवन्नभः ॥५२॥

महाबलशाली कार्तवीर्य के मारे जाने पर वायु धीरे धीरे चलने लगी और आकाश स्वच्छ हो गया ।

कार्तवीर्यश्च बैकुण्ठं जगाम हरिसन्निधौ ।
जगामपर्शुरामश्च प्रतिज्ञान्तं द्विषद्वधात् ॥५३॥

कार्तवीर्य विष्णु के पास बैकुण्ठ में चला गया और शत्रु को मार देने से परशुराम की प्रतिज्ञा पूरी हो गई ।

देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ।
सर्वे मूर्धनि रामस्य चक्रिरेपुष्पवर्षणम् ।।५४।।

देवी, देवता, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व और किन्नरों ने परशुराम पर पुष्पवृष्टि की ।

ब्रह्मा भृगुश्चशुक्रश्च बाल्मीकिश्चबृहस्पतिः ।
रामसन्निधिमायाता धन्यवादयुताशिषे ।।५५।।

ब्रह्मलोक से परशुराम के पास ब्रह्मा, शुक्र, भृगु, बाल्मीकि च्यवन तथा बृहस्पति आए ।

प्रणनाम च तान् सर्वान् रामः सत्यपराक्रमः ।
क्रोडे चकार तं ब्रह्मा राम रामेति च ब्रुवन् ।।५६।।

परशुराम ने उन सबको प्रणाम किया और ब्रह्मा जी ने राम राम कहते हुए उन्हें गोदी में बैठा लिया ।

जगाद पर्शुरामं च पूर्णकामं पितामहः ।
मातरं पितरं तात सेवस्वविनयान्वितः ।।५७।।

अपनी इच्छा पूरी कर लेने वाले परशुराम से ब्रह्मा जी ने कहा कि हे तात बिनयपूर्वक अपनी माता और पिता की सेवा करो ।

जीवत्पित्रोर्वचो मानात् क्षयाहे भूरि भोजनात् ।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्यपुत्रता ।।५८।।

जीवित रहते हुए माता पिता की आज्ञा मानना एवं मृत्युदिवस पर शताधिक विप्रादिकों को भोजन कराना तथा गया में पिण्डदान करना इन तीन बातों से पुत्र का पुत्रत्व होता है ।

निसर्गोत्तमसर्गोऽयं समाप्तोऽभवदष्टमः ।
त्रयोदशप्रवन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ।।५९।।

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस काव्य में स्वभावतः उत्तम अष्टम सर्ग समाप्त हुआ ।

अथ नवमः सर्गः

कार्तवीर्य निहत्याजौ कैलासमगमत्पुरा ।
गुरोर्महेश्वरस्यायं दर्शनाय भृगूद्वहः ॥१॥

कार्तवीर्य को युद्ध से मारकर परशुराम अपने गुरू शंकर के दर्शन करने के लिए कैलास गए ।

रुद्रान् सिद्धेश्वरांश्चापि विद्याधरगणांस्तथा ।
भूतान् प्रेतान् पिशाचांश्च मार्गेऽपश्यत् भृगूत्तमः ॥२॥

मार्ग में परशुराम ने रुद्रगण, सिद्धेश्वर, विद्याधर, भूत, प्रेत एवं पिशाचों को देखा -

अभिनंद्य च तान् सर्वान् पर्शु रामो महाबलः ।
शिवसद्मप्रवेशार्थमुपक्रममचीकरत् ॥३॥

उन सबका अभिनन्दन करके महाबली परशुराम ने शिव के आवास-स्थान में प्रवेश करने के लिए उपक्रम किया ।

तं गच्छन्तं भृगुश्रेष्ठं गणश्रेष्ठोह्यवोचत ।
क्षणंतिष्ठ महेशोऽद्य निद्रायुक्तोऽम्बया सह ॥४॥

उनको अन्दर जाते देखकर गणेश ने परशुराम से कहा कि अभी आप ठहरिये शंकर इस समय माता पार्वती के साथ सो रहे है ।

गणेशस्य वचः श्रुत्वा पर्शु रामस्तमब्रवीत् ।
यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातः प्रणामं कर्तुमीश्वरम् ॥५॥

गणेश के वचन सुनकर परशुराम ने उनसे कहा कि भाई मैं शंकर को प्रणाम करने के लिए अन्तःपुर में जाऊंगा ।

नानाविद्या यतो लब्धाः शस्त्रास्त्राणि मया पुरा ।
तं गुरूं जगतामीशं द्रष्टुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥६॥

जिनमें मैंने नांना प्रकार की विद्यायें सीखी हैं और शस्त्रास्त्र प्राप्त किए हैं इस समय मैं उन गुरू और जगत के स्वामी शंकर के दर्शन करना चाहता हूं ।

हतामया ह्यसंख्याता राजेन्द्राः समरांगणे ।
कार्तवीर्यः सुचन्द्रश्च तौ हतौयत्प्रसादतः ॥७॥

जिनकी कृपा से युद्धभूमि में मैंने असंख्य राजाओं को तथा कार्तवीर्य और सुचन्द्र को मारा ।

निर्गुणं सगुणं चापि भक्तानुग्रहविग्रहम् ।
सत्यं सत्यस्वरूपं च हरं स्मरहरं वरम् ॥८॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं तं जानामिपरात्परम् ।
वस्तुतस्तु मम भ्रातः न स शेते न बुध्यते ॥९॥

वे निर्गुण भी हैं सगुण भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए ही उनका विग्रह है । वे सत्य हैं सत्यस्वरूप है कामदेव को नमृ करने वाले अव्यक्त होते हुए भी शरीरधारी हैं परात्पर हैं यह मैं जानता हूं वस्तुतः हे भाई न वे सोते हैं न जागते हैं ।

इत्थमुक्त्वा हसन्रामः कामनापूर्ण मानसः ।
गमनाय मनश्चक्रे शिवयोर्दर्शनाय च ॥१०॥

इस प्रकार कहकर हंसते हुए तथा कामनापूर्ण परशुराम ने शिव पार्वती के दर्शन करने के लिए जाने का निश्चय किया ।

पर्शुरामवचः श्रुत्वा जितक्रोधो गणेश्वरः ।
शुद्धसत्वगुणैर्युक्तः प्रहस्य तमवोचत ॥११॥

परशुराम के वचन सुनकर क्रोध को जीत लेने वाले और शुद्ध सत्व गुणोंमें युक्त गणेश ने हंसकर उनसे कहा ।

यो निर्गुणः स निर्लिप्तः शक्तिभ्यो नहि संयुतः ।
सिसृक्षुराश्रितः शक्तिं निर्गुणः सगुणोभवेत् ।।१२।।

जो निर्गुण हैं वह निर्लिप्त है और शक्तियों से युक्त नहीं हैं किन्तु सृजन करने की इच्छा होने पर शक्ति का आश्रय लेकर निर्गुण भी सगुण हो जाता है ।

इदं श्रुतं पितुर्वक्त्राद् भ्रातस्ते गदितं मया ।
सम्प्रति त्वं प्रतीक्षस्व शंकरः सुरतोन्मुखः ।।१३।।

यह मैंने अपने पिता के मुख से सुना था जो कि मैंने तुम्हें बताया है इस समय तुम जरा प्रतीक्षा करो भगवान् शंकर सुरतोन्मुख हैं ।

गणेशस्य वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्त लोचनः ।
पर्शुरामः हठाद्गन्तुं पर्शुहस्तः प्रचक्रमे ।।१४।।

गणेश के वचनों को सुनकर क्रोध से लाल आँखों वाले परशुराम न हठपूर्वक जाने का उपक्रम किया ।

गणेशोऽपि च तद्दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय भूतलात् ।
हुंकृत्वापर्शुरामस्य करस्याकर्षणं व्यधात् ।।१५।।

यह देखकर गणेश ने भी शीघ्र ही उठकर हुंकार पूर्वक परशुराम का हाथ खींच लिया ।

पर्शुनिक्षेपणं कर्तुं पर्शुरामो व्यचारयत् ।
स्कन्दस्तु बोधयामास नैवं नैवं तदाचतम् ।।१६।।

परशुराम ने परशु से प्रहार करने का विचार किया तो कार्तिकेय ने बारबार 'ऐसा नहीं' उनसे कहा ।

अव्यर्थमस्त्रमेतत्त्वं गुरुपुत्रे कथं क्षिपेः ।
गुरुवद्गुरुपुत्रं च नैवत्वं हन्तुमर्हसि ।।१७।।

हे भाई तुम इस अमोघ अस्त्र को गुरुपुत्र पर कैसे फेंक रहे हो

गुरुपुत्र भी गुरु के समान होता है उसे तुम्हें इस प्रकार नहीं मारना चाहिए ।

चालयन्तं क्रुधापर्शुं गणेशः पुनराहतम् ।
निवर्तस्व निवर्तस्व प्रभोराज्ञा न वर्तते ॥१८॥

क्रोध से परशु को घुमाते हुए परशुराम से पुनः गणेश ने कहा कि हट जाओ हट जाओ अन्दर आने के लिए प्रभु की अनुमति नहीं है ।

अतिथिस्त्वं मम भ्राता विद्यासम्बन्धतोऽपि च ।
पितुश्च प्रियशिष्यत्वात् क्षमां कुर्वे त्वयि द्विज ॥१९॥

एक तो आप अतिथि है विद्या के सम्बन्ध से मेरे भाई भी हैं और पिता का प्रियशिष्य होने के कारण भी हे ब्राह्मण मैं तुम्हें क्षमा करता हूं ।

नह्यहं कार्तवीर्यश्च सुचन्द्रश्चापि भूपतिः ।
नत्वं जानासि मां भ्रातः पार्वतीप्रियमात्मजम् ॥२०॥

मैं कार्तवीर्य नहीं हूँ और राजा सुचन्द्र भी नहीं हूँ भाई पार्वती के प्रिय पुत्र मुझको तुम नहीं जानते हो ।

क्षिपन्तं तं क्रुधापर्शुं पर्शुरामं गजाननः ।
योगेन स्तम्भितं चक्रे योगविद्याविचक्षणः ॥२१॥

क्रोध से परशु को फेंकते हुए परशुराम को योगविद्या में निष्णात गणेश ने स्तम्भित कर दिया ।

हस्तपादाद्यशक्तं तं जडं सर्वांगकम्पितम् ।
राममाभ्रामयामास दर्पं भंक्तुं गणेश्वरः ॥२२॥

हाथ और पैर जिनके अशक्त और जड़ होगए हैं तथा सारा शरीर काँप रहा है ऐसे परशुराम को गणेश ने दर्प भंग करने के लिए पकड़ कर चारों ओर घुमाया ।

कृपया गणनाथस्तं पशु रामं सुदर्पितम् ।
संपतन्तं मृतप्रायं पुनर्जग्राह लीलया ।।२३।।

कृपा करके गणेश ने मृतप्राय होकर गिरते हुए गर्वीले परशुराम को पुनः लीलापूर्वक पकड़ लिया ।

संज्ञां लब्ध्वा पुनः पशुं रामश्चिक्षेप तं प्रति ।
जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थं चकार सः ।।२४।।

चेतना प्राप्त करने पर परशुराम ने उनके ऊपर परशु फेंका । गणेश ने उस अस्त्र को बाएँ दाँत के ऊपर ले लिया और इस प्रकार उसे व्यर्थ नहीं जाने दिया ।

पतित्वा वेगतः पशुः छित्वादन्तं गणप्रभोः ।
शंकरस्य प्रभावेण रामहस्तमुपागमत् ।।२५।।

वेग से गिरकर परशु गणेश का दाँत तोड़कर शंकर के प्रभाव से पुनः परशुराम के हाथ में चला गया ।

हाहेति शब्दमाचक्रुः देवताः शंकयान्विताः ।
वीरभद्रो महासेनः क्षेत्रपालश्चपार्षदाः ।।२६।।

भय से आकुल होकर देवता वीरभद्र, कार्तिकेय क्षेत्रपाल आदि पार्षद हाहाकार करने लगे ।

भूमौ पपात दन्तः स संरक्तः शब्दसंयुतः ।
निद्राभंगश्च तेनाभूत् भूतेशस्य जगद्गुरोः ।।२७।।

रक्तरंजित वह दाँत बड़े शब्द के साथ पृथ्वी पर जा गिरा जिससे जगद्गुरु भगवान शंकर की निद्रा भंग हो गई ।

आजगामाम्बिकायुक्तः सत्वरं नीललोहितः ।
स्मितयुक्तं मुखेरक्तं चैकदन्तं व्यलोकयत् ।।२८।।

तुरन्त ही पार्वती के साथ शंकर वहाँ आए और उन्होंने मुस्कराते हुए गणेश को देखा जिनके मुख से रक्त निकल रहा था ।

स्कन्दं पृष्टवती मातापार्वती किमिदं सुत।
तां च स कथयामास वार्तां पौर्वापरीं द्वयोः ॥२९॥

पार्वती ने कार्तिकेय से पूछा कि बेटा क्या बात है तब उन्होने दोनों के बीच हुई सारी बात उन्हें बताई।

पर्शुरामाय सा देवी चुकोप च रुरोद च।
उवाचपुरतः शम्भोः कृत्वा हेरम्बपुत्रकम् ॥३०॥

पार्वती ने परशुराम के प्रति क्रोध किया और रोईं तथा शंकर के आगे गणंश को करके बोलीं।

कथय त्वं प्रभो चाद्य, अनयोः पुत्रशिष्ययोः।
अरुन्तुदोपराधोऽयं कस्यास्तीति विनिश्चिनु ॥३१॥

हे प्रभो पुत्र और शिष्य दोनों में से यह बिकट अपराध किसका है इसका आप निश्चय करें और कहें।

वीरभद्रो महासेनः भैरवश्चात्र साक्षिणः।
वदिष्यन्ति समे सत्यं यज्जातं नात्रसंशयः ॥३२॥

वीरभद्र, कार्तिकेय और भैरव इसके साक्षी हैं जो कुछ हुआ है वह ये सब सही तरह से बताएँगे इसमें संशय नहीं है।

अपि जानन् वदत् साक्ष्यमन्यथा यदि संसदि।
लोभेनाथ भयेनाथ स नूनं नरकेपतेत् ॥३३॥

जानते हुए भी भय अथवा लोभ के कारण जो सभा में अन्यथा साक्ष्य देता है वह निश्चय ही नरक में जाता है।

पार्वत्युवाच भो राम मुनिपुत्रोऽसिसद्व्रतः।
मुनेर्भृगोः प्रपौत्रोऽसि शिष्यश्च जगतां गुरोः ॥३४॥

पार्वती ने कहा कि हे राम तुम मुनि के पुत्र हो सद्व्रत हो भृगु के प्रपौत्र हो तथा शंकर के शिष्य हो।

माता ते रेणुका साध्वी पद्मांशा सत्कुलोद्भवा ।
पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च तपोधनशिरोमणेः ॥३५॥

सत्कुल में उत्पन्न लक्ष्मी की अंशभूत साध्वी रेणुका तुम्हारी माता है और तपोधन शिरोमणि जमदग्नि के तुम पुत्र हो ।

अव्यर्थं परशुं लब्ध्वा गुरोश्च जगतां गुरोः ।
परीक्षां क्षत्रिये कृत्वा गणेशं जेतुमिच्छसि ॥३६॥

जगत् के गुरु शंकर के अमोघ परशु को प्राप्त करके ,तथा क्षत्रियों पर उसकी परीक्षा करके अब तुम गणेश को जीतना चाहते हो ।

त्वद्विधान् लक्षवीरांस्तु जेतुंशक्तो गणेश्वरः ।
जातो व्रतप्रभावेण शंकरस्य वरेण च ॥३७॥

शंकर के वर और व्रत के प्रभाव से ये उत्पन्न हुए हैं और तुम जैसे लाखों वीरों को जीतने में समर्थ हैं ।

इत्युक्त्वा पार्वती क्रोधात्रामं हन्तुंसमुद्यता ।
आविर्बभूव श्रीविष्णुः सहसा तं ननाम सा ॥३८॥

यह कहकर पार्वती क्रोध से परशुराम को मारने के लिए उद्यत हो गईं । इतने में सहसा भगवान्विष्णु वहां आए और पार्वती ने उनको प्रणाम किया ।

महादेवस्तु तं दृष्ट्वा सपत्नीकः सपुत्रकः ।
पादयोर्निपपाताशु भक्तयापरमयायुतः ॥३९॥

उन्हें देखकर पत्नी और पुत्र सहित शंकर परम भक्ति से उनके चरणों पर गिर पड़े ॥

उवाच तं महेशानो ह्यतिथिस्त्वं ममाधुना ।
अतिथिर्यस्य सन्तुष्टः सन्तुष्टं सर्वमेवहि ॥४०॥

शंकर ने कहा कि इस समय आप मेरे अतिथि हैं जिसका अतिथि सन्तुष्ट है उसके प्रति सब सन्तुष्ट होते हैं ।

अतिथिर्यस्य विमना याति रुष्टश्चसद्मनः।
शतजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति मन्मनः ॥४१॥

इच्छा पूरी न होने से अतिथि रुष्ट होकर जिसके घर से चला जाता है उसका सौ जन्मों में अर्जित पुण्य नष्ट हो जाता है ऐसा मेरा विचार है।

शंकरस्य वचः श्रुत्वा जगाद गरुड़ध्वजः।
बैकुण्ठादागतो देवि पर्शुरामस्यहेतवे ॥४२॥

शंकर के वचन सुनकर विष्णु बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि हे देवि मैं परशुराम के कारण से आया हूँ।

शृणु देवि वदाम्येतत् यथा तव गजाननः।
तथा परशुरामोऽयं पुत्रस्ते नात्र संशयः ॥४३॥

हे देवि सुनो जैसा पुत्र तुम्हारा गणेश है वैसा ही परशुराम भी है इसमें कोई संशय नहीं है।

स्नेहभेदोऽपि नास्त्येव तव वा शंकरस्य वा।
विचार्य सर्वं सर्वज्ञे कुरुष्वाद्ययथोचितम् ॥४४॥

तुम्हारे अथवा शंकर के स्नेह में भी कोई अन्तर नहीं है। इन सब बातों को सोचकर जो तुम ठीक समझो वह करो।

पार्वतीं बोधयित्वा सःपर्शुराममवोचत।
राम त्वमधुना सत्यमपराधी सतां मते ॥४५॥

पार्वती से इस प्रकार कहकर उन्होंने परशुराम से कहा कि हे राम सत्पुरुषों की दृष्टि में तुम निश्चय ही अपराधी हो।

प्रणम्य माधवः प्राह क्षमस्व परमेश्वरि।
धर्मपुत्राय रामायेत्युक्त्वा बैकुण्ठमव्रजत् ॥४६॥

प्रणाम करके विष्णु ने कहा कि हे परमेश्वरी धर्मपुत्र परशुराम को तुम क्षमा करो। यह कहकर वे बैकुण्ठ चले गए।

पर्शुरामो गते विष्णौ स्तुत्वा नत्वा च मातरम् ।
भ्रातरं च गुरुं चैव स्वाश्रमं पितुरागतः ।।४७।।

विष्णु के चले जाने के बाद परशुराम पार्वती की स्तुति करके उन्हें गणेश एवं शंकर को प्रणाम करके अपने पिता के आश्रम में लौट आए ।

समाप्तो नवमः सर्गो भवनिसर्गोत्तमयाश्रिया ।
त्रयोदश प्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ।।४८।।

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस काव्य में सौन्दर्य में निरुपम यह नवम सर्ग समाप्त हुआ ।

इति परशुरामदिग्विजये नवमः सर्गः ।।

अथ दशमः सर्गः

खण्डपर्शोर्जगत्ख्यातं पर्शु रामोऽथकार्मुकम् ।
मिथिलायां गतो द्रष्टुं पुराकुतूहलान्वितः ।।१।।

एकबार भगवान् शंकर के जगद् विख्यात धनुष को देखने के कुतूहल से परशुराम मिथिला गए ।

पर्शु रामस्ततंश्रुत्वा सीतापरिणयायतत् ।
खण्डितं रामभद्रेण दिव्यशक्तिधरेणव ।।२।।

'सीता से विवाह करने के लिए रामचन्द्र ने उसको तोड़ दिया है' यह दारुणवृत्तान्त परशुराम ने वहां पहुंचने पर सुना ।

सीतां विवाह्यगच्छन्तं सरामं सहभृत्यकम् ।
नृपं दशरथं द्रष्ट्वा रुरुदुः पक्षिणो भृशम् ।।३।।

सीता को विवाह कर ले जाते हुए राम तथा सेवकों सहित राजा दशरथ को देखकर पक्षी रोने लगे ।

उत्पाता बहवोजाताः द्रष्ट्वा यान् भृशमाकुलः ।
नृपोदशरथस्त्वद्य किमेतदित्यचिन्तयत् ।।४।।

और भी बहुत से उत्पात हुए जिन्हें देखकर व्याकुल दशरथ ने सोचा कि आज ये क्या बात है ।

राज्ञो दशरथस्यैतं ज्ञात्वा भावं वशिष्ठकः ।
उवाचेदं भयं घोरं देव केनापि कल्पितम् ।।५।।

राजा दशरथ के भाव को जानकर वशिष्ठ ने कहा कि हे देव यह उपस्थित हुआ भय किसी के द्वारा उत्पन्न किया गया है ।

एतस्मिन्नन्तरे सर्वे ददृशुः पुरतः स्थितम् ।
पर्शुरामं क्रुधापूर्णं ज्वलदंगारलोचनम् ॥६॥

इसी बीच सबने सामने परशुराम को खड़े हुए देखा वे क्रोध से कांप रहे थे और उनके नेत्र जलते हुए अंगारे के समान थे ।

पर्शुरामं तथा दृष्ट्वा निकामं क्रोधविह्वलम् ।
वशिष्ठप्रमुखाः सर्वे इदमूचुः परस्परम् ॥७॥

परशुराम को इस प्रकार क्रोध से विह्वल देखकर वशिष्ठादि ऋषि इस प्रकार परस्पर कहने लगे ।

कार्तवीर्यं निहत्याजौ पर्शुरामो महाबलः ।
विनाशं क्षत्रमात्रस्य कर्तुमिच्छति साम्प्रतम् ॥८॥

महाबली परशुराम युद्ध में कार्तवीर्य को मारने के बाद अब क्षत्रिय मात्र को मारना चाहते हैं ।

ऋषयो मधुरां वाचं रामरामेति चाऽब्रुवन् ।
प्रतिगृह्य तु तद् वाक्यं रामो राममवोचत ॥९॥

ऋषियों ने मधुरवाणी से राम राम इस प्रकार सम्बोधित किया और उनके इसी वाक्य को पकड़कर परशुराम रामचन्द्र से बोले ।

रामभद्र महाबाहो बलं ते सुश्रुतं मया ।
मद्गुरोर्धनुषो यत्तु भञ्जनं तन्न सह्यते ॥१०॥

हे महाबाहो रामभद्र मैंने तुम्हारे बल के बारे में खूब सुना है किन्तु मेरे गुरु के धनुष का जो भञ्जन हुआ है यह मुझ से सहन नहीं हो रहा है ।

गृहाणत्वं च कोदण्डमिमं ममविलक्षणम् ।
पूरयस्वाशुगेनाशु दर्शयस्वपराक्रमम् ॥११॥

तुम मेरे इस विलक्षण धनुष को लो इस पर शीघ्रता से बाण चढाओ और इस प्रकार अपना बल दिखाओ ।

तदाहं ते बलं बुध्वा धनुषो ह्यस्य पूरणात् ।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि यद्भाव्यं तद् भविष्यति ॥१२॥

इस धनुष पर बाण चढ़ाने के द्वारा तुम्हारे बल को जानकर मैं तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूँगा । जो होगा सो देखा जाएगा ।

रामस्य वचनं श्रुत्वा नृपो दशरथस्तदा ।
विषण्णवदनो भूत्वा बद्धाञ्जलिरवोचत ॥१३॥

परशुराम के वचन को सुनकर राजा दशरथ खिन्न हो गए और हाथ जोड़ कर बोले ।

क्षत्रहत्यानिवृत्तोऽसि त्वमिदानीं भृगूद्वह ।
नार्हस्यकारणं हन्तुं धर्मोपेतान् ममात्मजान् ॥१४॥

हे भृगूद्वह आप अभी क्षत्रियों की हत्या से निवृत्त हुए हैं । अकारण ही मेरे इन धर्मानुयायी पुत्रों को मारना आपके लिए उचित नहीं है ।

ब्राह्मणत्वाच्च पूज्योऽसि क्षत्रियस्य मम प्रभो ।
बालोऽयं रामभद्रश्च क्व त्वं क्वायं विचारय ॥१५॥

और मुझ क्षत्रिय के लिए आप ब्राह्मण होने के कारण भी पूज्य हैं । रामभद्र अभी बालक है कहाँ आप और कहाँ यह । यह भी तो सोचिए ।

अये दशरथ त्वं मे द्रक्ष्यस्यद्य पराक्रमम् ।
ज्ञास्यसि ब्राह्मणत्वेन पूज्योऽहं वाथ कर्मणा ॥१६॥

हे दशरथ तुम आज मेरा पराक्रम देखना तब तुम जान जाओगे कि मैं ब्राह्मण होने के कारण पूज्य हूँ अथवा कर्म द्वारा ।

पर्शुरामवचः श्रुत्वा क्रोधयुक्तं महारथः ।
नृपो दशरथस्त्वाह नोक्तं मे व्यङ्गगर्भितम् ॥१७॥

परशुराम के ये क्रोधपूर्ण वचन सुनकर दशरथ ने कहा कि मैंने कोई व्यंगपूर्ण बात नहीं कही है ।

मया तु कथितं चैतत् ब्राह्मणत्वात्तुमादृशः।
वीराणां वीर्यवत्त्वेन पूज्योऽसि भुवनत्रये ॥१८॥

मैंने तो यह कहा है कि ब्राह्मण होने के कारण मुझ जैसे व्यक्तियों के लिए और पराक्रम के कारण वीरों के लिए आप तीनों लोकों में पूज्य हैं।

कार्तवीर्यं निहत्याजौ शस्त्रं प्रक्षिप्तवानसि।
मया श्रुतं महर्षिभ्यः कथं पुनरुपक्रमः ॥१९॥

युद्ध में कार्तवीर्य को मारकर आपने शस्त्र त्याग दिए हैं ऐसा मैंने महर्षियों से सुना है फिर यह उपक्रम कैसा।

तस्मिन्नृपे वदत्येवं जामदग्न्यो महाबलः।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥२०॥

जब दशरथ इस प्रकार कह रहे थे तो महाबली परशुराम उनके कथन का अनादर करके रामचन्द्र से ही बोले।

निर्मितं विबुधैर्यद्वै महेशाय युयुत्सवे।
त्रिपुरघ्नं नरव्याघ्र धनुस्तत् खण्डितं त्वया ॥२१॥

हे नरव्याघ्र युद्ध करने की इच्छा रखने वाले शंकर के लिए देवताओं ने त्रिपुरनाशक एक धनुष बनाया था जिसे तुमने तोड़ा है।

द्वितीयमद्भुतं चेदं दुर्धर्षं विष्णुदैवतम्।
सामानसारं तेनैव धनुषा मम सन्निधौ ॥२२॥

यह दूसरा अद्भुत दुर्धर्ष धनुष विष्णु का मेरे पास है जो कि शंकर के धनुष के तुल्य ही दृढ़ है।

महादेवस्य विष्णोश्च बलाबलनिरीक्षया।
पृच्छन्ति स्म सुरज्येष्ठं समेत्य च समे सुराः ॥२३॥

शंकर और विष्णु के बलाबल को जानने की इच्छा से सब देवताओं ने यह बात ब्रह्मा के पास जाकर पूछी।

महद्युद्धं पुराजातं केशवस्य शिवस्य च।
हुंकारेण महादेवं विष्णुमस्तम्भयत्तदा ॥२४॥

एक बार शंकर और विष्णु का बड़ा भारी युद्ध हुआ। तब विष्णु ने हुंकारमात्र से शंकर को स्तम्भित कर दिया।

विजितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं वैष्णवतेजसा।
अधिकं मेनिरे देवा विष्णुं जिष्णुं जगत्त्रये ॥२५॥

वैष्णव तेज से शिवधनुष को जीता गया देखकर देवताओं ने विजयी विष्णु को तीनों लोकों में अधिक माना।

महेश्वरस्तु संक्रुद्धो तस्मिन्नपगतादरः।
देवरातस्य राजर्षः ददौ हस्ते स्वकार्मुकम् ॥२६॥

धनुष के प्रति आदर कम हो जाने के कारण क्रुद्ध शंकर ने वह धनुष राजर्षि देवरात को प्रदान कर दिया।

तदिदं वैष्णवं राम ऋचीकार्थमदाद् हरिः।
ऋचीकस्तु स्वपुत्राय मत्पित्रे जमदग्नये ॥२७॥

विष्णु ने इस वैष्णव धनुष को ऋचीक को दिया और ऋचीक ने अपने पुत्र और मेरे पिता जमदग्नि को दिया।

पितरि शस्त्रहीने मे कार्तवीर्यार्जुनो नृपः।
वधमप्रतिरूपं च कृतवांस्तस्य दुर्मतिः ॥२८॥

मेरे पिता के शस्त्रहीन हो जाने पर दुष्टबुद्धि कार्तवीर्य ने उनका वध कर दिया।

त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति।
प्रतिज्ञेयं मयाऽकारि क्रोधाविष्टेन भीषणा ॥२९॥

'मैं इस पृथ्वी को इक्कीस बार राजहीन करूँगा' यह घोर प्रतिज्ञा मैंने क्रोधावेश में की थी।

तद्धनुः खण्डनं श्रुत्वा दुःखितोऽहं समागतः ।
यदि शक्तोऽसि राम त्वं द्वन्द्वयुद्धं ददामि ते ॥३०॥

धनुष का तोड़ा जाना सुनकर मैं दुःखित होकर आया हूँ। राम यदि तुममें शक्ति है तो मुझसे द्वन्द्व युद्ध करो।

श्रुत्वा च पर्शुरामस्य वचो दाशरथिस्तदा ।
गौरवाद्यन्त्रितस्तं वै वचनं चेदमब्रवीत् ॥३१॥

परशुराम के वचन सुनकर गौरव से नियन्त्रित दाशरथि राम ने कहा।

श्रुतवानस्मि यत्कर्म कृतवानसि भोः प्रभो ।
अनुरुध्यामहे राम कुरु यत्ते चिकीर्षितम् ॥३२॥

जो कर्म आपने किए हैं। वे मैंने सब सुने हैं मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि जो आप करना चाहते हैं वह करें।

हरेरंशावतारत्वात् जन्मशौर्यतपोबलात् ।
अवजानासि मे तेजः पश्य मे बलमद्भुतम् ॥३३॥

विष्णु के अंशावतार होने के कारण ब्राह्मणवंश में जन्म के कारण तथा शौर्य एवं तप के कारण आप मेरे तेज का तिरस्कार कर रहे हैं। अब आप मेरे अद्भुत बल को देखें।

इत्युक्त्वा भगवान् रामः पर्शुरामस्य कार्मुकम् ।
शरं च प्रतिजग्राह कराल्लघुपराक्रमः ॥३४॥

यह कहकर भगवान् राम ने परशुराम के हाथ से फुर्ती से धनुष और बाण ले लिया।

आरोप्य तद्धनू रामः शरं सज्यमकल्पयत् ।
जागदग्न्यं ततो रामं रामः प्राह हसन्निव ॥३५॥

भगवान् राम ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर बाण रख लिया और हंसते हुए परशुराम से बोले।

आरोपितं मया दिव्यं धनुस्तव भृगूद्वह।
आज्ञापय मयातेऽद्य करणीयं किमस्तिवै ॥३६॥

हे परशुराम दर्प को नष्ट करने वाला यह दिव्य वैष्णव धनुष मैंने चढ़ा दिया है आगे कहो क्या करना है ॥

राम आहस्म हेराम त्वमंशः श्रीहरेरसि।
ज्ञाता शक्तिर्मयातेद्य त्वमहं त्वमहं किल ॥३७॥

परशुराम ने कहा कि हे रामभद्र मैं जान गया हूँ आप विष्णु के अंश हैं मैंने आपकी शक्ति को जान लिया है और निश्चय ही जो मैं हूँ वही आप हैं।

मधुकैटभहन्तारं नियन्तारंबलेरपि!
जाने त्वामादिपूरूषं कामादि रहितं तथा ॥३८॥

इस धनुष का आरोपण करने से मैं आपको जान गया हूँ कि मधु-कैटभ को मारने वाले और बलि का नियन्त्रण करने वाले आप ही हैं आप आदि पुरुष हैं कमक्रोधादि से रहित हैं ॥

रामो दाशरथी रामं सत्कृत्य नमनादिना।
स्वस्थानं प्रययौ सर्वैः रामोप्याश्रममागतः ॥३९॥

दाशरथि राम ने पूजन आदि से परशुराम का सत्कार किया तथा सब लोग अपने अपने स्थान को चले गए एवं परशुराम भी अपने आश्रम में आगए।

समाप्नोति स्म दशमः सर्गो मधुरतोत्तमः।
त्रयोदशप्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥४०॥

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस काव्य में माधुर्य में उत्तम दशम सर्ग समाप्त हुआ।

इति परशुरामदिग्विजये दशमः सर्गः ॥

अथैकादशः सर्गः

यत्र स्वर्गस्तु किं वस्तु मोक्षः कायस्य मोक्षणात् ।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥१॥

जिसके सामने स्वर्ग भी तुच्छ है और जहाँ शरीर छोड़ने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ।

यत्र ब्रह्मादयो देवाः तपन्तिस्म परन्तपः ।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥२॥

जहाँ ब्रह्मादिक देवताओं ने तप किया था उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ।

साचारो वाप्यनाचारो मृतो यत्र च मुक्तिभाक् ।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥३॥

आचारवान् हो या अनाचारी जहाँ पर मृत्यु होने मात्र से मनुष्य मुक्ति का अधिकारी हो जाता है उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ।

स्वं स्वं चरित्रं ज्ञातव्यं यत्रजादग्रजात्समैः ।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥४॥

जहाँ उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से सब लोग अपने चरित्र के विषय में शिक्षा ग्रहण करते हैं उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ।

यत्राभूद् भारतं भागवतं वेदपुराणकम् ।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥५॥

जहाँ महाभारत, भागवत, वेद और पुराणों की रचना हुई उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ।

यत्रानेकानि तीर्थानि सप्त नद्यो वनानि च।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ।।६।।

जहाँ अनेक तीर्थ हैं सात नदियाँ हैं और वन हैं उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो।

ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ।।७।।

जो लोग कुरुक्षेत्र भूमि में निवास करते हैं वे स्वर्ग में निवास करते हैं ऐसी पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो।

यत्र क्षेत्रे त्रिधा मुक्तिरन्तरिक्षे जले स्थले।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ।।८।।

जहाँ अन्तरिक्ष, जल एवं स्थल कहीं भी मृत्यु होने से मुक्ति प्राप्त होती है ऐसी पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो।

कुरुक्षेत्राष्टकं चैतत्प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
कुरुक्षेत्रे मृतिं प्राप्य पुनरुत्पद्यते न सः ।।९।।

जो प्रतिदिन प्रातः काल उठकर इस कुरुक्षेत्राष्टक का पाठ करता है वह कुरुक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होकर पुनः उत्पन्न नहीं होता है।

नर्मदास्थाश्रमं त्यक्त्वा जमदग्निर्महामुनिः।
कुरुक्षेत्रे तपस्यायै स्वाश्रमं पर्यकल्पयत् ।।१०।।

नर्मदा स्थित आश्रम को छोड़कर महामुनि जमदग्नि ने तपस्या के लिए कुरुक्षेत्र में अपना आश्रम बनाया।

सपत्नीकः सपुत्रश्च तत्रागत्य महामुनिः।
तपश्चचार देवानां योगिनां चापि दुश्चरम् ।।११।।

पत्नी और पुत्र सहित वहाँ आकर महामुनि जमदग्नि ने घोर तप किया जोकि देवताओं और योगियों के लिए भी दुष्कर था।

तत्र ग्रामश्च तीर्थश्च जामणीजमदग्निकौ ।
जीन्दपुर्या दशक्रोशे पूर्वस्यां दिशि तौ स्थितौ ॥१२॥

वहाँ जामणी नामक ग्राम और जमदग्नि नामक एक तीर्थ है जोकि जीन्दपुरी से दस कोस पर पूर्व में स्थित है ।

ततः क्रोशद्वये चास्ति रिटोलीग्रामको मम ।
यत्र चूड़ामणौ तीर्थे राजते शिवमन्दिरम् ॥१३॥

वहाँ से दो कोस पर रिटोली नामक मेरा गाँव है जहाँ कि चूड़ामणि नामक तीर्थ में एक शिवमन्दिर है ।

मत्पिता मोक्षरामश्च पितृव्यो नन्हुरामकः ।
पितृव्यः शिवदत्तश्च वैयाकरणकेसरी ॥१४॥

अत्रागत्य भुवं क्रीत्वा गृहं कृत्वा च सुन्दरम् ।
निवसन्ति स्म ते सर्वे पूजयन्ति स्म शंकरम् ॥१५॥

मेरे पिता मोक्षराम, चाचा नन्हुराम और चाचा शिवदत्त वैयाकरण-केसरी ने यहाँ आकर भूमि खरीद कर तथा सुन्दर मकान बनाकर शंकर की आराधना करते हुए निवास किया ।

ततः पश्चिमभागे तु तीर्थं पिण्डारकं महत् ।
यत्रादुः पाण्डवाः पिण्डानमायां सोमवासरे ॥१६॥

उसके पश्चिम भाग में पिण्डारक नामक एक बड़ा तीर्थ है जहाँ कि सोमवती अमावस्या को पाण्डवों ने पिण्डदान किया था ।

अत्रास्ति रतिरामस्य शास्त्रिणः स्थानमेककम् ।
यत्रैका पाठशालापि धर्मशालास्त्वनेकशः ॥१७॥

यहाँ रतिराम शास्त्री का निवास स्थान है जिसमें एक पाठशाला भी है और धर्मशाला तो अनेक हैं ।

पूर्वभागे महातीर्थं नागक्षेत्रं सपीदमे ।
तक्षवंश्यानहीनत्र जुहाव जनमेजयः ।।१८।।

पूर्वभाग में सपीदम के अन्दर नागक्षेत्र नामक महातीर्थ है यहाँ जनमेजय ने तक्षवंश के सर्पों की यज्ञ में आहुति दी थी ।

मन्त्राणां बलतः विप्रैरिन्द्रासनसमान्वितः ।
आनीतः तक्षकः स्वर्गात् जनमेजयप्रार्थनात् ।।१९।।

जनमेजय द्वारा प्रार्थना किए जानेपर ब्राह्मणों ने मन्त्रों के बल से इन्द्रासन समेत तक्षक को स्वर्ग से बुला लिया था ।

किन्तु तैर्व्यासवचनात् स मुक्तो हवनात्तथा ।
आस्तीककथनादेषा प्रसिद्धा भारती कथा ।।२०।।

व्यास एवं आस्तीक के कहने से वह जलने से बचा । यह महाभारत की प्रसिद्ध कथा है ।

स्वाश्रमे निवसन् रामः स्वीयं पितरमब्रवीत् ।
त्वत्कृपातो मया तात कार्तवीर्यो रणे हतः ।।२१।।

आश्रम में रहते हुए परशुराम ने अपने पिता से कहा कि हे तात मैंने आपकी कृपा से कार्तवीर्य को युद्ध में मारा ।

यस्तेऽपराधमातेने दुष्टमन्त्रिनिबोधितः ।
तस्य दण्डो मया दत्तः शठे शाठ्यं समाचरेत् ।।२२।।

दुष्ट मन्त्रियों के कहने से जिसने आपका अपराध किया था मैंने उसको दण्ड दे दिया है । दुष्ट के साथ दुष्टता का ही व्यवहार करना चाहिए ।

भवन्तं तु नमस्कृत्यः गतोऽहं ब्रह्मणोऽन्तिके ।
तं नमस्कृत्य निःशेषं वृत्तान्तं स्वं न्यवेदयम् ।।२३।।

आपको नमस्कार करके मैं ब्रह्मा के पास गया था और उनको प्रणाम करके मैंने अपना सारा वृत्तान्त सुनाया ।

ब्रह्मोवाच स्वकार्यार्थं राम गच्छ शिवान्तिके ।
शिवलोके ततोऽगामि ब्रह्मणोऽनुज्ञयामया ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा कि हे तात कार्य सिद्धि के लिए तुम शिव के पास जाओ इस प्रकार ब्रह्मा की अनुमति से मैं शिवलोक गया ।

गत्वा नमस्कृतो देवः शिवया सहितः शिवः ।
तत्पार्श्वे मयका सर्वं स्वस्य वृत्तं निवेदितम् ॥२५॥

जाकर मैंने पार्वती सहित शिव को प्रणाम किया और अपना सारा वृत्तान्त सुनाया ।

त्रैलोक्यविजयाख्यं मे श्रुत्वाऽदात् कवचं प्रभुः ।
पर्शुं पाशुपतास्त्रं च तत्सिद्धयै पुष्करं गतः ॥२६॥

वृत्तान्त सुनकर उन्होंने मुझे त्रैलोक्य विजय नामक कवच, परशु एवं पाशुपतास्त्र प्रदान किया जिसको सिद्ध करने के लिए मैं पुष्कर तीर्थ गया ।

तत्राहं साधयित्वा तत्कवचं दुर्लभं पितः ।
कार्तवीर्यार्जुनं हत्वा शिवलोकेऽगमं पुनः ॥२७॥

वहाँ परमेश्वर के उस दुर्लभ कवच को सिद्ध करने के बाद कार्तवीर्यार्जुन को मारकर मैं पुनः शिवलोक गया ।

तौ नत्वा देवदेवेशौ पार्वतीपरमेश्वरौ ।
इदानीमागतः पार्श्वे रामोऽहं तेऽक्षतव्रणः ॥२८॥

देवों के भी देव पार्वती शंकर को प्रणाम करके व्रणहीन मैं अब आपके पास आया हूँ ।

इत्युक्त्वा पितरं रामो विरराम च मातरम् ।
जमदग्निस्तमाहेदं पर्शुरामं हितं वचः ॥२९॥

माता पिता से इस प्रकार कहकर परशुराम चुप हो गए तब जमदग्नि ने उनसे ये हितकारी वचन कहे ।

क्षत्रहत्याभिजातस्य राम दोषस्य शान्तये ।
प्रायश्चित्तं कुरुष्वाद्य यथाशास्त्रं यथाविधि ।।३०।।

हे राम क्षत्रियों की हत्या से उत्पन्न दोष की शान्ति के लिए तुम शास्त्र में उल्लिखित प्रायश्चित विधिवत् करो ।

पितुरेवं वचः श्रुत्वा रामः शत्रुविरामकृत् ।
आह भोः तात तत्सर्वं मह्यं त्वं बोधय द्रुतम् ।।३१।।

पिता के इन वचनों को सुनकर शत्रु का नाश करने वाले परशुराम ने कहा कि हे पिता मुझे जल्दी ही आप सब कुछ बताएँ ।

जमदग्निस्तमाहेदं तपसा नियमेन च ।
द्वादशाब्दं फलाहारो दुश्चरं त्वं तपश्चर ।।३२।।

जमदग्नि ने कहा कि तपस्या और नियमपूर्वक बारह वर्ष तक फलाहार करते हुए कठिन तप करो ।

रामः श्रुत्वा पितुर्वाक्यं महेन्द्रं पर्वतं ययौ ।
कृत्वाऽऽश्रमं फलाहारः तत्र तेपे परं तपः ।।३३।।

पिता के वाक्य को सुनकर परशुराम महेन्द्र पर्वत चले गए तथा आश्रम बनाकर फलाहार करते हुए उन्होंने वहाँ उग्र तप किया ।

कार्तवीर्यस्य राजर्षेः पुत्र आसीज्जयध्वजः ।
तस्य पुत्रः तालजंघो रामाद्भीतो वनेऽवसत् ।।३४।।

कार्तवीर्य का पुत्र जयध्वज था उसका पुत्र तालजंघ था जो कि परशुराम के भय से वन में रहता था ।

रामबाणेन यः पूर्वं द्रवन्पृष्ठेऽभिताडितः ।
शीघ्रमेवापतद्भूमौ मूर्च्छितो भवति स्म सः ।।३५।।

भागते समय पीठ में परशुराम का बाण लगने से जो शीघ्र ही भूमि पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया ।

ततः शान्तिं गते रामे तपस्यालीनमानसे ।
जालजंघस्तु तत्पुत्रः स्वराज्यं लब्धवान् पुनः ॥३६॥

तपस्या में लगे रहने के कारण परशुराम के शान्त हो जानेपर उसके पुत्र जालजंघ ने पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लिया ।

वासयित्वा पुरीं भूयः तां स माहिष्मतीं नृपः ।
सभृत्यः सहपुत्रश्च निजं राज्यमपालयत् ॥३७॥

माहिष्मती नगरी को अच्छी तरह बसाकर वह राजा भृत्यों एवं पुत्रों के साथ अपने राज्य का पालन करने लगा ।

सपुत्रः सानुगो राजा पूर्वं वैरमनुस्मरन् ।
अभ्याययौ कुरुक्षेत्रे जमदग्न्याश्रमान्तिके ॥३८॥

पूर्व वैर को ध्यान में रखते हुए पुत्रों और भृत्यों सहित वह राजा कुरुक्षेत्र में जमदग्नि के आश्रम के पास आया ।

श्रुत्वाऽऽश्रमपदं तत्र किंचिदद्दूरे तु तन्मुनेः ।
तत्प्रविश्य समाधिस्थं ददृशुस्ते मुनीश्वरम् ॥३९॥

मुनि के आश्रम को कुछ दूर सुनकर तथा वहाँ प्रवेश करके उन्होंने मुनि को समाधिस्थ देखा ।

मुनिं हत्वा शिरो नीत्वा श्वपाक इव निर्दयः ।
निष्क्रम्याश्रमतो दुष्टः ससेनः स्वपुरं ययौ ॥४०॥

मुनि को मारकर और सिर को काटकर चाण्डाल की तरह निर्दय वह दुष्ट राजा आश्रम से निकलकर सेना सहित अपने नगर चला गया ।

भर्तारं निहतं भूमौ पतितं वीक्ष्य रेणुका ।
पपात मूर्च्छनां प्राप्य लता वज्रहता यथा ॥४१॥

अपने पति को भूमि पर मरा हुआ देखकर रेणुका वज्र से आहत लता के समान मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ।

मृतं स्वं पितरं दृष्ट्वा शोकविह्वलिताः सुताः ।
रुरुदुः परिवार्यैनं किंचित्कर्तुमनीश्वराः ।।४२।।

पिता को मरा हुआ देखकर शोक से विह्वल और कुछ करने में असमर्थ पुत्र उसको चारों तरफ से घेर कर रोने लगे ।

रेणुका च महाशोकात् मूर्च्छां लब्ध्वा पुनः पुनः ।
दूरप्रणष्टसंज्ञा च द्रुतं प्राणैर्व्ययुज्यत ।।४३।।

महाशोक से बार-बार मूर्च्छित होती हुई रेणुका ने संज्ञाहीन होकर शीघ्र ही प्राण छोड़ दिए ।

सान्त्व्यमानाः मुनिश्रेष्ठैः पुत्राः पित्रोः कलेवरे ।
कृत्वाग्निसात्तदूर्ध्वं यत् कर्म चक्रुर्यथाविधि ।।४४।।

अन्य मुनियों द्वारा सान्त्वना दिए जाते हुए उन्होंने माता पिता के शरीरों का दाह किया तथा यथाविधि और्ध्वदैहिक कर्म किया ।

ततः काले गते रामो वर्षाणां द्वादशावधौ ।
निवृत्तः तपसा सख्या सहागादाश्रमं पितुः ।।४५।।

बारह वर्ष बीतने पर तपस्या से निवृत्त होकर परशुराम अपने सखा के साथ पिता के आश्रम में गए ।

प्राणनाशं पितुः स्वस्य शिरोहरणमेवच ।
तन्मृत्योरेव मृत्युंच श्रुत्वा मातुः स दुःखितः ।।४६।।
क्षत्रवंश्यानशेषेण हत्वा तद्देहशोणितैः ।
करिष्ये तर्पणं पित्रोः प्रतिज्ञेयं मया कृता ।।४७।।

अपने पिता का वध और तत्पश्चात् शिर काट लिया जाना सुनकर एवं इसी कारण से अपनी माता का मरण सुनकर वे वहुत दुःखी हुए तथा 'समस्त क्षत्रियों को मारकर उनके रुधिर से अपने माता पिता का तर्पण करूँगा' यह प्रतिज्ञा की ।

ततोमुहुरभूत्युद्धं रामस्य क्षत्रियैः सह ।
जघानपशु ना रामः क्षत्रान् लक्षाधिकान् पुनः ॥४८॥

तब परशुराम का क्षत्रियों के साथ बारबार युद्ध हुआ और उन्होंने लक्षाधिक क्षत्रियों को पुनः परशु से मारा ।

कालेन तावता यावान् समुत्पन्नो नृपान्वय ।
निघ्नंश्चचार तं सर्वं वर्षद्वयमयंमहीम् ॥४९॥

जितने भी क्षत्रिय उस काल में उत्पन्न हुए उन सबको मारते हुए वे दो वर्ष तक पृथ्वी पर विचरण करते रहे ।

गतोनिसर्गमाधुर्यः सर्गएकादशः किल ।
त्रयोदश प्रवन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥५०॥

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस पवित्र काव्य में माधुर्य युक्त ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

इति परशुराम दिग्विजये एकादशः सर्गः ।

अथ द्वादशः सर्गः

ततः क्षत्रियवीराणां नृपाणां बलधारिणाम् ।
रामः षष्टिसहस्राणि जीवग्राहं गृहीतवान् ।।१।।

इसके अनन्तर परशुराम ने साठ हजार क्षत्रिय वीरों और बलशाली राजाओं को जीवित पकड़ लिया ।

स्वाश्रमात् षोड़शे क्रोशे जामणीस्थाद् भृगूद्वहः ।
जीन्दपुर्याः चतुःक्रोशे पञ्चखानितवान्ह्रदान् ।।२।।

जामणी स्थित अपने आश्रम से सोलह कोस पर एवं जीन्द से चार कोस की दूरी पर परशुराम ने पाँच सरोवर खुदवाकर तैय्यार करवाये ।

जघान तत्र तान् क्षत्रान् ये चानीताः सजीविताः ।
तेषां शरीररक्तात्स पञ्चपूरितवान् ह्रदान् ।।३।।

जीवित पकड़ कर लाए हुए उन क्षत्रियों को वहाँ मार दिया और उनके रुधिर से पाँचों सरोवरों को भर दिया ।

तेषु स्नात्वा च रामस्तु रक्तपूर्णेषु पञ्चसु ।
पितरौ तर्पयामास यथाशास्त्रं यथाविधि ।।४।।

रक्त से परिपूर्ण उन पाँचों सरोवरों में स्नान करके परशुराम ने शास्त्रोक्तविधि के अनुसार मातापिता का तर्पण किया ।

स स्वस्मात् सप्तसंख्यानां पितॄणां तृप्तिकांक्षिणाम् ।
कारयामास तेष्वेव श्राद्धादिकमशेषतः ।।५।।

उन्होंने अपने सात पितरों का जो कि उनसे तृप्ति की आकांक्षा रखते थे सम्पूर्ण श्राद्धादिक कृत्य किया ।

ब्राह्मणद्वेषिराजन्यरक्तात् ये पंचपूरिताः ।
ह्रदा जलमया जाता ख्याता रामह्रदाख्यया ॥६॥

ब्राह्मणद्वेषी क्षत्रियों के रक्त से जो पाँच सरोवर पूर्ण किये गए थे वे पीछे जलमय होगए तथा रामह्लद नाम से विख्यात हुए ।

स्यमन्तपञ्चकं चेति ते वै प्रख्यातिमागमन् ।
सर्वपापहरं स्नानात् दानात्तत्र महत्फलम् ॥७॥

सब पापों को दूर करने वाले वे स्यमन्तपञ्चक नाम से विख्यात हुए । वहाँ स्नान और दान करने का बहुत पुण्य है ।

स्नानं दानं तथा होमं तत्र ब्राह्मणभोजनम् ।
कारयित्वा भृगुश्रेष्ठः पितृतृप्तिमकल्पयत् ॥८॥

वहाँ स्नान, दान, होम तथा ब्राह्मण भोजन कराके परशुराम ने पितरों को सन्तुष्ट किया ।

नभःकार्तिकवैशाखपूर्णिमासु समासु वा ।
स्यमन्तपञ्चकस्नायी भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥९॥

श्रावण, कार्तिक, और वैशाख की पूर्णिमा को अथवा सभी पूर्णिमाओं को स्यमन्तपञ्चक में स्नान करने वाला भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त करता है ।

द्वापरे भगवान् कृष्णः सूर्यग्रहणपर्वणि ।
अत्रागत्य स्वपित्राद्यैः स्नानदानाद्यकल्पयत् ॥१०॥

द्वापर में भगवान् कृष्ण ने सूर्यग्रहण के अवसर पर यहाँ आकर अपने पिता आदि के निमित्त स्नान दानादि किया ।

तस्मात् क्रोशद्वये तीर्थं पुष्करं स ततोऽगमत् ।
तत्र स्नात्वा पितॄन्प्राच्र्य कृतकृत्यो ह्यजायत ॥११॥

वहाँ से दो कोस की दूरी पर स्थित पुष्कर तीर्थ में परशुराम गए वहाँ स्नान करके तथा पितरों का पूजन करके वे कृतकृत्य हुए ।

पुनरागत्य तत्रैव कंचित्कालमुवास सः ।
कथादिश्रवणं कुर्वन् ब्राह्मणैः सहितः प्रभुः ॥१२॥

पुनः वहीं आकर वे ब्राह्मणों के साथ कथादि श्रवण करते हुए वहाँ कुछ समय रहे ।

अद्यापि भगवांस्तत्र रामः स्त्रीपुरुषैरपि ।
मात्रा पित्रा सहासीनः पूज्यते मन्दिरद्वये ॥१३॥

आज भी माता पिता के साथ दो मन्दिरों में विराजमान परशुराम की सभी स्त्री पुरुष पूजा करते हैं ।

धर्मशालाऽत्र विप्राणां पाठशाला तथैव च ।
अध्यक्षत्वे ममाद्यत्वे सम्यक् प्रचलति द्वयम् ॥१४॥

यहाँ ब्राह्मणों की एक पाठशाला तथा एक धर्मशाला आजकल मेरे अध्यक्षत्व में सुचारू रूप से चल रही है ।

पित्रर्थे पिण्डदानार्थं गयातीर्थं स चाव्रजत् ।
कृत्वा श्राद्धं विधानेन पिण्डान् पित्रोः कृते ददौ ॥१५॥

माता पिता का पिण्डदान करने के लिए वे गयातीर्थ गए और वहाँ विधिपूर्वक श्राद्ध करके माता पिता को पिण्ड दिए ।

ब्राह्मणांस्तर्पयामास तत्र भोजनवस्त्रकैः ।
पितृप्रीतिकरं तीर्थं तादृग् भूमौ नचास्ति वै ॥१६॥

वहाँ भोजन वस्त्रादि द्वारा उन्होंने ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया । पितरों की प्रीति करने वाला वैसा तीर्थ पृथ्वी में दूसरा नहीं है ।

अथ ते प्रीतिमापन्नाः समेत्याहुर्भृगूद्वहम् ।
महत्कर्म कृतं राम भवताऽन्यैः सुदुष्करम् ॥१७॥

प्रसन्न होकर उन सब ने आकर परशुराम से कहा कि हे राम तुमने बहुत बड़ा कार्य किया है जो कि औरों के लिए बहुत दुष्कर है ।

क्षत्रहत्यादिदोषाणां शमनाय च पुत्रक।
प्रायश्चित्तं कुरुष्वाद्य धर्मरक्षणहेतवे ॥१८॥

हे पुत्र क्षत्रहत्यादि के कारण हुए पाप की शान्ति के लिए और धर्म की रक्षा के लिए अब तुम प्रायश्चित्त करो।

हिंसनाद् विनिवर्तस्व राजन्यानामतः परम्।
माहिंस्यात्सर्वभूतानीत्येव श्रुतिमतं हितम् ॥१९॥

अब तुम क्षत्रियों का वध करने से विरत हो जाओ। 'प्राणियों की हिंसा न करो' इस श्रुतिवाक्य का पालन करना ही हितकर है।

क्षत्रियान्प्रति यो रोषः तं मुञ्चास्मत्कृताज्ञया।
इत्युक्त्वान्तर्दधुः सर्वे पितरो हृष्टमानसाः ॥२०॥

हमारी आज्ञा से तुम क्षत्रियों के प्रति रोष को त्याग दो यह कहकर प्रमुदित पितर अन्तर्धान हो गए।

परशुरामोऽपि तदाक्यः प्रतिजग्राह सादरम्।
प्रययौ ब्राह्मणैः सार्धं कुरुक्षेत्रे सरस्वतीम् ॥२१॥

परशुराम ने भी उनके वचन को आदरपूर्वक शिरोधार्य किया और ब्राह्मणों के साथ कुरुक्षेत्र में सरस्वती के तट पर चले गए।

बहवः तापसास्तत्रागत्य रामं महाप्रभुम्।
अवोचन्भगवन् राम श्रृणुष्वेदं निवेदनम् ॥२२॥

अनेक तपस्वियों ने वहाँ आकर परशुराम से कहा कि हे भगवन् आप हमारा निवेदन सुनें।

स्मरता भवता तात स्वीयस्य निधनं पितुः।
त्रिःसप्तकृत्वो भूरेषा क्षत्रियैरहिता कृता ॥२३॥

हे तात ! तुमने अपने पिता की मृत्यु का स्मरण करते हुए इस पृथ्वी को इक्कीस वार क्षत्रियहीन किया है।

जमदग्निगृहेऽवतीर्य राम सकलं ब्रह्मकुलं च भूतलं च।
परिपूर्णमथो व्यधायि कीर्त्या ब्रह्मद्वेषपरान्समाप्य भूमेः ॥२४॥

हे परशुराम ! जमदग्नि के घर में जन्म लेकर आपने समस्त ब्रह्मकुल को तथा भूमि से ब्रह्मद्वेषियों को समाप्त करके पृथ्वी को कीर्ति से परिपूर्ण कर दिया।

कुलं पवित्रं निजसूः कृतार्था वसुन्धरा वीरवती त्वयैषा।
कृतासमस्ता धरणी ऋणीवत् ब्रह्मद्विषःक्षत्रकुलस्यहन्त्रा ॥२५॥

आपने कुल को पवित्र किया माता को कृतार्थ किया पृथ्वी को वीरवती बनाया तथा ब्रह्मद्वेषी क्षत्रियों को मारने वाले आपने समस्त पृथ्वी को अपना ऋणी बनाया।

सर्वेषां मतमेतद् वै महर्षीणां हितैषिणाम्।
अश्वमेधो महायज्ञः त्वया राम विधीयताम् ॥२६॥

हितकामना करने वाले सभी महर्षियों का यह मत है कि तुम अश्वमेधमहायज्ञ करो।

तथास्त्विति प्रतिज्ञाय सरस्वत्याः शुभे तटे।
सम्भारानखिलान्कृत्वा यज्ञं कर्तुं स आरभत् ॥२७॥

तथास्तु यह प्रतिज्ञा करके उन्होंने सरस्वती के पवित्र तट पर समस्त सामग्री एकत्रित करके यज्ञ प्रारम्भ किया।

विश्वामित्रभरद्वाजमार्कण्डेयादिभिः सह।
अश्वमेधं चकारासौ पर्शुरामो महाक्रतुम् ॥२८॥

परशुराम ने विश्वामित्र, भरद्वाज तथा मार्कण्डेयादि के साथ अश्वमेध नामक-महायज्ञ किया।

तत्राभूत्कश्यपोऽध्वर्यु रुद्गाता गोतमो मुनिः।
विश्वामित्रोऽभवद्धोता मार्कण्डेयस्तथाविधिः ॥२९॥

यज्ञ में कश्यप अध्वर्यु, गोतम उद्गाता, विश्वामित्र होता तथा मार्कण्डेय ब्रह्मा बनें।

पुरग्रामशतैर्युक्तां सप्तसागरमेखलाम् ।
दक्षिणायां ददौ पृथ्वीं कश्यपाय भृगूद्वहः ॥३०॥

परशुराम ने दक्षिणा में कश्यप को पुर, ग्राम और सप्तसागरों से युक्त पृथ्वी प्रदान की ।

अमूल्यानि स रत्नानि सुवर्णंरजते च गाः ।
ब्रह्मादिभ्यो द्विजन्मभ्यो दत्वा तानप्यतोषयत् ॥३१॥

अमूल्यरत्न सोना चाँदी तथा गाय ब्रह्मादिक ब्राह्मणों को प्रदान कर उन्हें भी सन्तुष्ट किया ।

यज्ञान्तेऽवभृथस्नानं सरस्वत्यां विधाय सः ।
सपादलक्षविप्रेभ्यो भोजनं दक्षिणामदात् ॥३२॥

यज्ञ समाप्त होने पर सरस्वती में अवभृथस्नान करके उन्होंने सवा लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया और दक्षिणा दी ।

ततोराममनुज्ञाय मुनयः कश्यपादयः ।
यथाऽऽयाताः तथा याता बहुशः परितोषिताः ॥३३॥

तब परशुराम की आज्ञा लेकर कश्यपादि मुनि भी सन्तुष्ट होकर जैसे आए थे वैसे ही चले गए ।

गतेषु तेषु रामोऽपि भृशं सन्तुष्टमानसः ।
महेन्द्रे पर्वतश्रेष्ठे तपस्तप्तुं पुनर्ययौ ॥३४॥

उनके चले जाने पर सन्तुष्ट परशुराम भी तप करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर चले गए ।

विप्रेभ्यः कश्यपेनाथ दत्ता तैः कृषिकृत्कृते ।
करमादाय सा भूमिरित्येवमनुशुश्रुम ॥३५॥

कश्यप ने वह भूमि ब्राह्मणों को प्रदान करदी ब्राह्मणों ने कर लेकर उसे कृषकों को दे दिया ऐसा सुनते हैं ।

अद्यापि स करो भूमेः कृषिकारैः प्रदीयते ।
स्योढीरूपेण विप्राय स्वपौरोहित्यकारिणे ॥३६॥

भूमि का वह कर आज भी किसान स्योढी रूप में पुरोहित को प्रदान करते हैं ।

अगस्त्यपीतपानीयाः चिरं शुष्कोदका अपि ।
गंगाम्भसा पुनः पूर्णाः चत्वारोऽम्बुधयोऽभवन् ॥३७॥

अगस्त्य द्वारा पानी पी लिए जाने पर सूखे चारों समुद्र गंगा के जल से पुनः भर गए ।

पूर्यमाणेषु तेष्वेव गंगाजलप्रवाहतः ।
बहवोऽन्तर्हिता देशाः समुद्राणां समीपगाः ॥३८॥

गंगाजल से समुद्रों के भरे जाते समय उनके तटवर्ती बहुत से देश जलमग्न हो गए ।

समुद्रोपान्तवर्तीनि क्षेत्राणि त्वाप्लुतानि च ।
जना इतस्ततो यातास्तज्जलैर्दुःखमापिताः ॥३९॥

समुद्र के किनारे विद्यमान क्षेत्र जलमग्न होगए तथा उससे दुःखित व्यक्ति इधर उधर चले गए ।

गोकर्णमिति च क्षेत्रं पवित्रं पृथिवीतले ।
समुद्रोपान्तवर्तित्वात् सलिलेऽन्तर्दधे तदा ॥४०॥

पृथ्वी में गोकर्ण नामक पवित्र क्षेत्र समुद्र के किनारे होने के कारण उसके जल में निमग्न हो गया ।

समुद्धारेच्छया तस्य सर्वे तद्वासिनो जनाः ।
श्रीरामं भृगुशार्दूलं द्रष्टुकामा व्यचारयन् ॥४१॥

वहाँ के सभी निवासियों ने उसके उद्धार की इच्छा से परशुराम से मिलने का विचार किया ।

मुनयः शुष्कमित्राद्या महेन्द्रं तत आययुः ।
अतीत्य सुबहून् देशान् वनानि सरितस्तथा ।।४२।।

बहुत से देश, वनों, पर्वतों तथा नदियों को पार करके शुष्कमित्रादि मुनिगण महेन्द्रपर्वत पर आए ।

तत्र दृष्ट्वा च ते रामाश्रमं सवजनैस्तुतम् ।
प्रशान्तश्वापदव्याप्तं सर्वर्तु फलशोभितम् ।।४३।।
तं तदाश्रममासाद्य वेदघोषेण घोषितम् ।
शिष्यैः परिवृतं शान्तं विविशुस्ते महर्षयः ।।४४।।

सभी के द्वारा प्रशंसित शान्त, वन्यपशुओं से परिपूर्ण और सब ऋतुओं के फल से शोभित उस आश्रम को देखकर महर्षिगण वेदपाठ से गुंजायमान शिष्यों से परिवृत उस में प्रविष्ट हुए ।

कालाग्निमिव लोकांस्त्रीन् दग्ध्वा शान्तमिवानिलम् ।
तपसि संस्थितं शान्त्य तद्दोषस्य निजेच्छया ।।४५।।
दृष्ट्वापर्शु रामं तं मुनयः पुण्यराशयः ।
निबद्धाञ्जलयो नेमुः शुद्धान्तःकरणाश्च ते ।।४६।।

कालाग्नि के समान तीनों लोकों को भस्म करके शान्त अग्नि के समान अपनी इच्छा से उस दोष की शान्ति के लिए तप में लगे हुए परशुराम के पास आकर शुद्धान्तःकरण पुण्यराशि मुनियों ने अञ्जलि बाँध कर प्रणाम किया ।

रामस्तानागतान् दृष्ट्वा विनयानतकंधरः ।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सर्वान् पूजयामास सादरम् ।।४७।।

परशुराम ने उन्हें आया देखकर आदरपूर्वक विनय से सिर झुकाकर अर्घ्यपाद्यादि से उन सबका सत्कार किया ।

तानासीनान्कृतातिथ्यान् देशान्तरसमागतान् ।
उवाच सादरं रामः स्मितपूर्वमिदं वचः ।।४८।।

देशान्तर से आए हुए उन सबका आतिथ्य करने के पश्चात परशुराम ने आदरपूर्वक मुस्कराते हुए कहा ।

स्वागतं भोः महाभागाः सर्वलोकहितानुगाः ।
विधातव्यं किमस्त्यद्य मया युष्माकमीहितम् ॥४९॥

सब लोगों के हित में लगे हुए हे महाभाग आपका स्वागत है आज मैं आपकी क्या इच्छा पूरी करूँ ।

सर्वे ते मुनयो रामं प्रणम्योचुः स्वमाशयम् ।
जानीह्यस्मान् भृगुश्रेष्ठ गोकर्णक्षेत्रवासिनः ॥५०॥

तब समस्त मुनियों ने प्रणाम करके अपना आशय बताया और कहा कि हे राम आप हमें गोकर्ण क्षेत्र का निवासी जानें ।

केनापि हेतुना भूमिं खनद्भिः सगरात्मजैः ।
सतीर्थं तन्महाक्षेत्रं प्लावितं सागराम्भसा ॥५१॥

किसी कारण से भूमि खोदते हुए सगरपुत्रों ने तीर्थ सहित वह महाक्षेत्र सागर के जल में निमग्न कर दिया ।

उत्सारितार्णवं क्षेत्रं पवित्रं पापनाशनम् ।
पुनःप्राप्तुमिहेच्छामः तव रामकृपालवात् ॥५२॥

हे राम आपकी कृपा से हम उस पवित्र पापनाशक क्षेत्र को समुद्र जल से हीन पुनः प्राप्त करना चाहते हैं ।

विष्णोरंशेन जातस्त्वं भृगुवंश्यशिरोमणे ।
नहि कर्तुमशक्यं ते त्रिषु लोकेषु किंचन ॥५३॥

हे भृगुवंश शिरोमणि आप विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए हैं तीनों लोकों में ऐसा कोई कार्य नहीं है जो आप न कर सकें ।

वाञ्छितार्थप्रदो लोके त्वमेवेत्यनुशुश्रुमः ।
इति हेतोः वयं प्राप्ताः त्वां प्रभो विनयान्विताः ॥५४॥

संसार में आप ही इच्छित अर्थ को देने वाले हैं ऐसा हम सुनते हैं अतएव विनयान्वित हम आपके पास आए हैं ।

राम: तत्सर्वमाश्रुत्य मुनीनां भावितात्मनाम् ।
प्रोचे मया विधानीयं युष्मत्कृत्यमसंशयम् ॥५५॥

परशुराम ने महर्षियों की सारी बात सुनकर कहा कि निस्सन्देह मैं आपका यह कार्य करूँगा ।

किन्तु युष्मदभिप्रतं सुगमं न मुनीश्वरा: ।
शस्त्रास्त्रग्रहणाच्छक्यं मयापि न तदन्यथा ॥५६॥

किन्तु हे मुनीश्वर आपका कार्य सरल नहीं है मैं भी शस्त्रास्त्र द्वारा ही उसे कर सकता हूँ अन्यथा नहीं ।

न शस्त्रग्रहणं भूय: करिष्यामीत्यहं पुरा ।
प्रतिज्ञाय सतां मध्ये तद्वृथा करणं वृथा ॥५७॥

'मैं अब पुन: शस्त्रग्रहण नहीं करूँगा' इस प्रकार सज्जनों के बीच प्रतिज्ञा करके अब उसको मिथ्या करना व्यर्थ है ।

दत्तसर्वाभयोऽहं वै न्यस्तशस्त्र: शमे स्थित: ।
तप: कर्तुं प्रवृत्तोऽस्मि पितॄणामनुशासनात् ॥५८॥

सबको अभयदान देकर न्यस्तशस्त्र मैं शम में स्थित होकर पिता के आदेश से तप करने में लगा हुआ हूँ ।

शस्त्रग्रहणत: शक्यं कर्तुं कार्यमिदं हि व: ।
इतिदोलायितं चित्तं किंकर्तव्यविनिश्चये ॥५९॥

किन्तु हे मुनीश्वर आपका यह कार्य शस्त्रग्रहण द्वारा ही साध्य है अब क्या करना चाहिए इस विषय में मेरा चित्त स्थिर नहीं है ।

तदाह शुष्कमित्रस्तु सतां संरक्षणाय ते ।
शस्त्राणां ग्रहणं चैतत् नैव दोषाय जायते ॥६०॥

शुष्कमित्र ने कहा कि आपका यह शस्त्रग्रहण सज्जनों की रक्षा के लिए है अत: इसमें कोई दोष नहीं है ।

तस्मात् धर्मस्य रक्षार्थं भवता ग्राह्यमायुधम् ।
न जातु जायते पापं धर्म एव भविष्यति ॥६१॥

अतः धर्म की रक्षा के लिए आप शस्त्रग्रहण करें इसमें पाप नहीं होगा अपितु धर्म ही होगा ।

एवं संप्रार्थ्यमानस्तु मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
ययौ तमनुश्रित्यैव दिशं दक्षिणपश्चिमाम् ॥६२॥

इस प्रकार तत्वदर्शी ऋषियों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर परशुराम उसका पालन करते हुए दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर गए ।

स सह्याचलमुत्तीर्य जगाम मुनिभिः सह ।
समुद्रस्य महातीरं भृगुवंश्यशिरोमणिः ॥६३॥

परशुराम सह्याचल को पारकरके मुनियों के साथ समुद्र के किनारे पहुंचे ।

स ददर्श सरित्कान्तं शान्तं रत्नाकरं प्रभुः ।
अपरिज्ञेयगाम्भीर्यं धैर्यं हि महतामिव ॥६४॥
दुस्तरं सकलैः लोकैः नानाग्राहैः समन्वितम् ।
महातरंगसंगेन चलद्व्यालसमाकुलम् ॥६५॥

उन्होंने नदियों के पति शान्त समुद्र को देखा जिसका गाम्भीर्य अपरिमेय और महान् व्यक्तियों के समान धीर था समस्तजनों के लिए दुस्तर था नानाग्राहों से तथा बड़ी बड़ी तरंगों के साथ चलते हुए सर्पों से युक्त था ।

मुहूर्तमिव तत्तीरे विश्रम्य स भृगूद्वहः ।
वरुणं द्रष्टुकामस्तु मृदुशब्दैरवोचत ॥६६॥

कुछ देर वहाँ विश्राम करने के पश्चात् वरुण को देखने की इच्छा से वे मृदुवाणी से बोले ।

अहं मुनिगणैः सार्धमागतः त्वद्दिदृक्षया ।
अतः स्वरूपधृङ् मह्यं प्रचेतो देहि दर्शनम् ॥६७॥

मैं मुनिगणों के साथ तुम्हारे दर्शनों की इच्छा से आया हूँ अतः स्वरूप धारण करके मुझे दर्शन दो ।

तच्छ्रुत्वा न ददौ किंचित् वचनं नापि दर्शनम् ।
यदा स सरितां नाथः क्रुद्धोऽभूद् भृगुनन्दनः ॥६८॥

यह सुनकर भी जब समुद्र ने न तो कोई उत्तर दिया और न ही दर्शन दिए तो परशुराम क्रुद्ध हो गए ।

संक्षुब्धहृदयो भूत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
निर्जलं जलधिं कर्तुमिच्छतिस्म शराग्निना ॥६९॥

क्रुद्ध होकर परशुराम ने बाणाग्नि से समुद्र को जलरहित कर देने की इच्छा की ।

ततो जलमुपस्पृश्य समुत्थाय निजं धनुः ।
मनसा शंकरं स्मृत्वा सशरं कर्तुमुद्यतः ॥७०॥

तब आचमन करके मन से शंकर का स्मरण करते हुए परशुराम उस पर बाण चढाने के लिए उद्यत हुए ।

चचाल सकला भूमिः चेलुः सकलभूधराः ।
पर्शुरामो दधौ चापे शरं तापकरं ततः ॥७१॥

परशुराम ने जब धनुष पर बाण रखा तो पृथ्वी डोलने लगी और पर्वत काँपने लगे ।

संहितास्त्रं भृगुश्रेष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनम् ।
बभूवुर्देवदैतेयाः दृष्ट्वा संत्रस्तमानसाः ॥७२॥

क्रोध से लाल आँखों वाले परशुराम को शस्त्र उठाये हुए देखकर देवदानव भयभीत होगए ।

आकृष्ट धनुषस्तस्य दृष्ट्वा रूपं यमोपमम् ।
प्रसीद भगवन् राम तुष्टुवुस्तं मुनीश्वराः ॥७३॥

धनुष खींचे हुए उनके यमतुल्य रूप को देखकर मुनियों ने उनकी स्तुति की कि हे राम आप प्रसन्न होइये ।

क्षोभं प्राप महाम्भोधिः चचाल सकलं जलम् ।
दृष्ट्वा भयंकरं रामं सबाणधनुषान्वितम् ।।७४।।

बाण सहित धनुष से युक्त परशुराम को देखकर समुद्र क्षुब्ध हो गया और समस्त जल चलायमान हो गया ।

भयकम्पितसर्वांगः तूर्णमेव महार्णवः ।
कृताञ्जलिरवोचत्तं रक्ष मां शरणागतम् ।।७५।।

शीघ्र ही भय से काँपते हुए समुद्र ने अञ्जलि बाँधकर कहा कि मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए ।

अपराधं क्षमस्वाद्य मयाकृतमजानता ।
महिमानं प्रभो तेद्य करणीयं निवेदय ।।७६।।

हे प्रभो आपकी महिमा को न जानते हुए मैंने जो अपराध किया है उसे आप क्षमा करदें और क्या करना है यह शीघ्र ही बताएँ ।

इत्थं ब्रुवाणमम्भोधिं पादयोः पतितं पुरः ।
विलोक्य भगवान् रामः संजहारास्त्रकं स्वकम् ।।७७।।

पैरों में गिरे हुए समुद्र को इस प्रकार कहते हुए देखकर परशुराम ने अपना अस्त्र उतार लिया ।

भयपूर्णं तदा रामः वरुणं प्रत्यभाषत ।
गोकर्णक्षेत्रवास्तव्यमुनीनामीप्सितं कुरु ।।७८।।

परशुराम ने कहा कि गोकर्णक्षेत्र में रहने वाले मुनियों की इच्छा पूरी करो ।

त्वत्तोये पृथिवीं सर्वां खनद्भिः सगरात्मजैः ।
अधोनिपतितं क्षेत्रं गोकर्णमृषिसेवितम् ।।७९।।

सारी पृथ्वी को खोदने वाले सगर के पुत्रों ने ऋषि सेवित गोकर्ण क्षेत्र को तुम्हारे जल में डुबा दिया ।

समुत्सारय तत्सर्वं मदर्थे सलिलं ततः ।
पवित्रं तन्महाक्षेत्रं कर्तुमर्हसि पूर्ववत् ॥८०॥

मेरे लिए तुम सारे जल को वहाँ से हटा लो और उस पवित्र क्षेत्र को पूर्ववत् कर दो ।

सोऽब्रवीद्यत्प्रमाणं त्वं क्षेत्रं संकल्पयिष्यसि ।
तावत्त्यजामि तत्क्षेत्रं भवतोऽनुज्ञयाप्रभो ॥८१॥

उसने कहा कि जितना क्षेत्र आप कहेंगे उतना मैं आपकी आज्ञा से छोड़ दूंगा ।

कृतकृत्याः मुनीन्द्रास्ते लब्ध्वा स्वीयं मनोरथम् ।
जातास्ते विस्मिताः सर्वे दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥८२॥

अपने मनोरथ की पूर्ति से मुनिगण कृतकृत्य हो गए तथा परशुराम का पराक्रम देखकर देवता विस्मित हो गए ।

त्र ताद्वापरयोः सन्धौ रामात् शस्त्रभृतां वरात् ।
गृहीतवान् धनुर्वेदं भीष्मः सत्यपराक्रमः ॥८३॥

त्रेता द्वापर की सन्धि में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम से भीष्म ने धनुर्वेद की शिक्षा ली ।

काशिराजस्य पुत्र्या तु भार्गवः प्रार्थितोऽम्बया ।
स्वीयशिष्येण भीष्मेण युद्धं कर्तुममन्यत ॥८४॥

काशिराजपुत्री अम्बा द्वारा प्रार्थना किए जानेपर परशुराम अपने शिष्य भीष्म के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गए ।

हस्तिनापुरमागत्य प्राह भीष्मं भृगूद्वहः ।
अम्बायाः प्रार्थनामंगीकुरु वा युद्धमेव वा ॥८५॥

हस्तिनापुर आकर परशुराम ने भीष्म से कहा कि या तो अम्बा की प्रार्थना स्वीकार करो अथवा युद्ध करो ।

न भयान्न च लोभाद्वा न दयातो न चेच्छया ।
क्षात्रं धर्ममहं ब्रह्मन् जह्यां भीष्मो न्यवेदयत् ॥८६॥

भीष्म ने कहा कि भय, लोभ, दया अथवा इच्छा से मैं अपना क्षात्र धम नहीं छोड़ूंगा ।

तच्छ्रुत्वा नु भृगुश्रेष्ठः क्रोधादाह कुशिष्य रे ।
न करिष्यसि चेदाज्ञां त्वां हनिष्यामि संगरे ।।८७।।

यह सुनकर परशुराम ने क्रोध से कहा कि अरे कुशिष्य या तो आज्ञा का पालन करो अन्यथा तुम्हें युद्ध में मार डालूंगा ।

भीष्मः प्राह गुरुस्त्वं मे मया सम्मानितः प्रभो ।
गुरुधर्मं न जानीषे सह योत्स्यामि तेन ते ।।८८।।

भीष्म ने कहा कि आप मेरे गुरु हैं मैंने आपका सम्मान किया है चूंकि आप गुरु के धर्म को नहीं जानते हैं अतः मैं आपके साथ युद्ध करूँगा ।

इति तौ द्वौ प्रतिज्ञाय रामभीष्मौ महारथौ।
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे जग्मतुर्युद्धहेतवे ।।८९।।

इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके परशुराम और भीष्म युद्ध करने के लिए कुरुक्षेत्र गए ।

रणे स्वगुरुणा योद्धुं यदा भीष्मः समुद्यतः ।
जयाशीर्वादमादातुं रामंपार्श्वे जगाम सः ।।९०।।

जब भीष्म अपने गुरु के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हुए तो विजय का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए परशुराम के पास गए ।

शपेयं त्वां न चेदेवं कुर्यास्त्वं कुरुसत्तम ।
युध्यस्व धैर्यमाश्रित्य प्रसन्नोऽस्मि तवोपरि ।।९१।।

उन्होंने कहा कि हे कुरुश्रेष्ठ यदि तुम ऐसा नहीं करते तो मैं तुम्हें शाप दे देता । धैर्य पूर्वक युद्ध करो मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ ।

ततस्तयोर्द्वयोर्युद्धं त्रयोदशदिनान्यभूत् ।
येन भीतं जगत्सर्वं देवासुरनरात्मकम् ।।९२।।

तेरह दिन तक उन दोनों का युद्ध हुआ जिससे देवदानव और मनुष्य भयभीत हो गए ।

तदेकरात्रौ भीष्मस्तु शयानः समचिन्तयत् ।
न च रामं महावीर्यं जेतुं शक्नोमि संगरे ॥९३॥

एक रात्रि भीष्म ने लेटे हुए सोचा कि मैं महाबली परशुराम को युद्ध में नहीं जीत सकता हूँ ।

यदि जेष्याम्यहं राम वसवो बोधयन्तु माम् ।
तदाते दर्शनं दत्वा भीष्ममाहुर्यशोधनम् ॥९४॥

यदि मैं परशुराम को जीत सकता हूँ तो वसुगण मुझे दर्शन दें । तब उन्होंने दर्शन देकर भीष्म से कहा ।

इदमस्त्रं गृहाण त्वं न चैतद् वेत्ति भार्गवः ।
प्रस्वापनामकं भीष्म तेन त्वं जयमाप्नुयाः ॥९५॥

तुम इस अस्त्र को स्वीकार करो इसको परशुराम नहीं जानते हैं और इससे तुम विजय प्राप्त करो ।

प्रयोजयैनत् तस्मै त्वं स च स्वप्स्यत्यनेन वै ।
प्रसुप्तो वा मृतो वापि तुल्यमेव न संशयः ॥९६॥

तुम इसका उनपर प्रयोग करो इससे वे सो जायेंगे । सुप्त अथवा मृत निस्सन्देह दोनों बराबर होते हैं ।

न च रामेण मर्तव्यं कदापि कुरुनन्दन ।
ततो निःसृतमेतद्धि प्रस्वावं त्वं नियोजय ॥९७॥

कुरुनन्दन परशुराम चिरजीवी हैं अतः कभी नहीं मरेंगे । इससे यह निष्कर्ष निकला कि तुम उन पर प्रस्वापास्त्र का प्रयोग करो ।

ततः प्रस्वापकं शस्त्रं भीष्मः त्वयुक्तं यदोद्यतः ।
तदा नारद आगत्य तत्प्रयोगं न्यषेधयत् ॥९८॥

जब भीष्म प्रस्वापास्त्र का प्रयोग करने के लिए उद्यत हुए तो नारद ने आकर उसके प्रयोग का निषेध कर दिया ।

देवाश्च पितरश्चैव तौ द्वौ युद्धान्न्यवर्तयन् ।
न च भीष्म त्वया योद्धुं योग्यं रामेण कर्हिचित् ॥९९॥

देवों और पितरों ने दोनों को युद्ध से हटा दिया और कहा कि हे भीष्म तुम्हें परशुराम से युद्ध नहीं करना चाहिए।

ततो भीष्मो गुरोः पार्श्वं गत्वा च न्यपतत् पदोः ।
चिरायुर्भव भीष्म त्वमाशीर्वादं ददौ गुरुः ॥१००॥

तब भीष्म गुरु के पास जाकर उनके चरणों में गिर गए उन्होंनें चिरायु होने का आशीर्वाद दिया।

ततो देवाश्च पितरो गन्धर्वा वसवो नराः ।
पर्शुरामश्च भीष्मश्च यथायाताः तथा गताः ॥१०१॥

तब देव, पितर, गन्धर्व, वसुगण, मनुष्यादि, परशुराम और भीष्म जैसे आये थे वैसे ही चले गये।

इत्यनेकानि कार्याणि लोकातीतानि भार्गवः ।
कृत्वेश्वण तपसा चिरंजीवित्वमाप्तवान् ॥१०२॥

इस प्रकार अनेक लोकातीत कार्य करके परशुराम ने तप से चिर-जीवित्व प्राप्त किया।

विजयं पर्शुरामस्य श्रद्धया पठति तु यः ।
सर्वान् कामानवाप्येह दीर्घमायुः स विन्दति ॥१०३॥

जो श्रद्धा पूर्वक परशुराम विजय को पढ़ता है वह इस लोक में सब कामनाओं को प्राप्त करके दीर्घ आयु को प्राप्त करता है।

कुरुक्षेत्रे निवसताइन्द्रप्रस्थप्रवासिना ।
जगद्गुरोः शंकराचर्याद्विद्यासागरताभृता ॥१०४॥
महामहोपाध्यायेन छज्जूरामेण शास्त्रिणा ।
पंचविंशे द्विसहस्रे विक्रमादित्यवत्सरे ॥१०५॥
पुराणवृत्तं संक्षिप्य परिवर्त्य च किंचन ।
चरितं पशुरामस्य लिखितं कृतिनां कृते ॥१०६॥

जगद्गुरु शंकराचार्य से विद्यासागर की पदवी प्राप्त करनेवाले कुरु-क्षेत्र निवासी इन्द्रप्रस्थप्रवासी महामहोपाध्याय छज्जूराम शास्त्री ने विक्रम संवत् २०२५ में पुराणवृत को संक्षिप्त करके तथा कहीं कहीं परिवर्तित करक विद्वानों के लिए परशुरामविजय काव्य लिखा।

हरेरंशावतारस्य पर्शुरामस्य वीरताम्।
लिखित्वा छज्जूरामोऽहं यातोऽस्मि कृतकृत्यताम् ॥१०७।

विष्णु के अंशावतार परशुराम की वीरगाथा लिखकर मैं छज्जूराम कृतकृत्य हो गया हूँ।

नान्यत् पुण्यतमं समस्तजगति क्षेत्रं कुरुक्षेत्रतः।
नासीत्सप्तसमुद्रमुद्रितमही दाता च रामात्परः।
छज्जूरामसदृक् समस्तविषयज्ञातास्ति नान्यःसुधीः
इत्येषा जयतात् त्रयी स्व यशसा यावत् क्षितौ जाह्नवी।१०८

समस्त संसार में कुरुक्षेत्र से अधिक पवित्र क्षेत्र कोई नहीं है। सप्त समुद्रयुक्त पृथ्वी का दान करनेवाले परशुराम से बढ़कर कोई दाता नहीं हुआ। छज्जूराम के समान समस्त शास्त्रों का ज्ञाता कोई अन्य विद्वान नहीं है इस प्रकार जब तक पृथ्वी पर गंगा विद्यमान है तब तक ये तीनों अपने यश से परिपूर्ण रहें॥

यत्किमप्यत्र वृत्तं तत्प्रमाणितं न कल्पितम्।
यत् किंचिदपि नूत्नत्वं भूषणं तन्नदूषणम् ॥१०९।

जो वृत्त यहाँ है वह प्रमाण सहित है कल्पित नहीं और जो नवीनता है वह उसका भूषण है दूषण नहीं॥

समाप्तिमगमच्चैष द्वादशः सर्ग उत्तमः।
त्रयोदश प्रबन्धानांभ्रातुः चैतस्यकाव्यस्य ॥११०

तेरह ग्रन्थों के भ्राता इस पवित्र काव्य में बारहवाँ उत्तम सर्ग समाप्त हुआ।

इति परशुराम दिग्विजये द्वादशः सर्गः।

श्रीनारायणदासस्य प्रकाशाख्येन सूनुना।
शिष्येण छज्जूरामस्य विद्यासागर शास्त्रिणः॥
सुगमस्यापि काव्यस्य टीकेयं विमलाभिधा।
मयागुरोर्निदेशेन बालबोधकृते कृता॥

इति प्रकाश शास्त्रिणोविरचिता हिन्दी टीका समाप्ता।

हमारा संस्कृत हिन्दी साहित्य

(१)	न्यायसिद्धान्त मुक्तावलि—मूलचन्दिका सं० टीका	४)
(२)	न्यायदर्शन—सरल संस्कृत टीका	१)
(३)	सदानन्दीय वेदान्तसार—सरल सं० टीका	।।)
(४)	सुलतान चरित्र काव्य (अप्राप्य),	
(५)	दुर्गाभ्युदय नाटक संटिप्पण	।।)
	जीवनराम शास्त्रिकृत हिन्दी टीका सहित	२)
(६)	साहित्य बिन्दु—जीवनराम शास्त्री हिन्दी टीका सहित	२।।)
(७)	विबुध रत्नावलि—खोजपूर्ण हिन्दी टीका सहित	२।।)
(८)	निरुक्त-पञ्चाध्यायी सं०—हिन्दी टीका सहित	५)
(९)	महाभाष्य द्वि आह्निक—सं० हिन्दी टीका सहित	२।।)
(१०)	कुरुक्षेत्र माहात्म्य—खोजपूर्ण हिन्दी टीका सहित	१)
(११)	लघुसिद्धान्तकौमुदी—प्रत्येकप्रयोगसाधनसहिता,	
	जीवनराम शास्त्रिकृत हिन्दी टीका सहित	२।।)
(१२)	कर्मकाण्डपद्धति—प्रत्येक मन्त्रार्थ सहिता	२)
(१३)	काव्यप्रकाश—विद्यासागरी टीका सहित, (यन्त्रस्थ)	
(१४)	परशुरामदिग्विजयमहाकाव्य—हिन्दी टीका सहित	२)

प्राप्ति स्थान—

(१) पं० रतिराम शास्त्री

साहित्यभण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ।

(२) पंजाबी पुस्तक भण्डार

दरीबा कलाँ, दिल्ली-६